

पुरोवाक्

प्रस्तुत पुस्तक "वेद पारिजात" राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद् के पूर्वतः सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग की लघुपुस्तकमाला योजना के अन्तर्गत तथा सम्प्रति भाषा विभाग के तत्त्वावधान में कक्षा ११-१२ के छात्रों तथा सरल संस्कृत जिज्ञासुओं को ध्यान में रखकर लिखी गई है। इसमें विशाल वैदिक साहित्य की संक्षिप्त सारगर्भित एवं बहुमूल्य सामग्री का संकलन एवं संपादन कर उसे सरल, सहज तथा बोधगम्य बनाकर प्रस्तुत किया गया है जिसके द्वारा संस्कृत छात्रों तथा संस्कृत जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा की पूर्ति की जा सके। यह पुस्तक छात्रों में ज्ञान को भरने के स्थान पर उन्हें संस्कृत अध्ययन की ओर प्रेरित करती है। इसमें वैदिक साहित्य जैसे विषय को छात्रोपयोगी तथा सरल शैली में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। आशा है, यह पुस्तक न केवल संस्कृत छात्रों के लिए अपितु संस्कृत भाषा एवं साहित्य के सामान्य जिज्ञासुओं के लिए भी उपादेय सिद्ध होगी।

इस पुस्तक को परिषद् की स्वर्णजयन्ती वर्ष में प्रकाशित करने हेतु तत्परता एवं आवश्यक मार्गदर्शन देने के लिए भाषा विभाग के अध्यक्ष प्रो. रामजन्म शर्मा हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। पुस्तक की पाण्डुलिपि निर्माणादि में अनेकविध सहयोग करने के लिए भाषा विभाग के सेवा निवृत्त संस्कृत आचार्य डॉ. कमलाकान्त मिश्र तथा वर्तमान आचार्य डॉ. कृष्णचन्द्र त्रिपाठी सहित असिस्टेंट प्रोफेसर डॉ. रणजित बेहरा हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक की पाण्डुलिपि समीक्षा के लिए आयोजित गोष्ठियों में उपस्थित होकर जिन विषय विशेषज्ञों तथा अनुभवी संस्कृत अध्यपकों ने अपने बहुमूल्य सुझावों एवं सहयोग से पुस्तक को उपयोगी बनाने में योगदान किया है, परिषद् उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती है।

पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तक का विकास एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। अतः पुस्तक को और उपयोगी बनाने के लिए विशेषज्ञों एवं अध्यापकों के अनुभव पर आधारित परामर्शों का सहर्ष स्वागत किया जाएगा तथा संशोधित संस्करण तैयार करते समय उनका समुचित उपयोग किया जाएगा।

परिशील
प्रो. जी रवीन्द्र
निदेशक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली

अक्तुबर - नवम्बर २०१०

विषय-सूची

प्रथम खण्ड- वेद परिचय

1. वेदों का महत्त्व
2. वेद क्या हैं?
3. वेदों का आविर्भाव
4. वेदों का विषय
 - (क) ऋग्वेद - विभाजन तथा प्रतिपाद्य विषय
 - (ख) यजुर्वेद - विभाजन तथा प्रतिपाद्य विषय
 - (ग) सामवेद - विभाजन तथा प्रतिपाद्य विषय
 - (घ) अथर्ववेद - विभाजन तथा प्रतिपाद्य विषय
 - (ङ) अथर्ववेद में विज्ञान
5. ब्राह्मण-ग्रन्थ - प्रतिपाद्य विषय - विधि-अर्थवाद
 - (क) ऋग्वेदीय ब्राह्मण
 - (ख) यजुर्वेदीय ब्राह्मण - शुक्लयजुर्वेद तथा कृष्णयजुर्वेद के ब्राह्मण
 - (ग) सामवेदीय ब्राह्मण
 - (घ) अथर्ववेदीय ब्राह्मण
6. आरण्यक
7. उपनिषद्
8. प्रमुख उपनिषदों का परिचय

ईशोपनिषद्, केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद्, केवल्योपनिषद्, श्वेताश्वतरोपनिषद्

9. प्रमुख वैदिक ग्रन्थों की तालिका
10. वैदिक परिभाषाएँ
मन्त्र - संहिता-ब्राह्मण- ऋषि-छन्द-देवता-विनियोग
11. मन्त्र पाठ के भेद
संहितापाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, विकृतिपाठ
12. स्वर-विचार
13. शाखा-भेद तथा उच्चारण विषयक नियम
14. वेदायै-परिचय

द्वितीय खण्ड- वेद वाणी (अनुवाद सहित)

(क) ऋग्वेद-संहिता

1. अग्निसूक्तम् (I 1.1-3,6-9)
2. विष्णु सूक्तम् (I 22.17-21)
3. सवितृसूक्तम् (I. 35.2-4,9-10)
4. इन्द्रसूक्तम् (II. 12.2,7, 9, 13)
5. उषःसूक्तम् (III 61.1.2,4)
6. मण्डूकसूक्तम् (VII. 103, 3, 6, 7)
7. हिरण्यगर्भसूक्तम् (X.121,1,-4,10)
8. संवनन (संघटन) सूक्तम् (X. 191)

(ख) यजुर्वेद-संहिता

1. प्रार्थना (I.1)
2. सरस्वती (xx. 84-86)
- 3 राष्ट्रगीतम् (xxii 22)
- 4 स्वस्तिवाचनम् (xiv. 19,21,22, xxxiii 36, xxx 3)
- 5 पुरुष (xxxi 1-3,7)
- 6 मेधा (xxxii 14-16)

7 शिवसंकल्पः (xxxvi 6)

8 शान्तिपाठः (xxxvi 3-5, 9-10, 22-24)

(ग) सामदेव- संहिता

1. आग्नेयगानम् (1, 3, 20, 27, 31)

2. भद्रगानम् (111, 422, 627)

(घ) अथर्ववेदसंहिता

1. वाचस्पतिः (I.1.1)

2. सांमनस्यम् (III.30 1-3, 6-7)

3. सर्वात्मिका वाक् (IV.30)

4. विषनिवारणम् (VI.12)

5. शमी (केशरोगहरणम्) (VI.30)

(ङ) उपनिषद्

1. ईशावास्योपनिषद् (1, 2, 9, 11, 18)

2. केनोपनिषद् (2, 8, 11, 12)

3. कठोपनिषद् (1, 2, 2, 5, 18, 23, 13-14)

4. प्रश्नोपनिषद् (I-8; II-12, 13, V-7)

5. मुण्डकोपनिषद् (I:-1, 4, 5, 8; I,ii-13, II,ii-8,10; III, i - 6, III, ii - 8)

6. तैत्तिरयोपरिषद् (अनुवाक- 11)

7. ऐतरेयोपनिषद् (I-1; V-1)

8. छान्दोग्योपनिषद् (I 2, 12-1, III, 14-1, 4, i- 4, VII - 23,24)

9. बृहदारण्यकोपनिषद् (II,4-5, II, 5-1)

10. कैवल्योपनिषद् (10, 20)

11. श्वेताश्वतरोपनिषद् (I-15, III-8, IV-5, VI-11, 18)

तृतीय खण्ड-वैदिक आख्यान

1. सरमा और पणि (ऋग्वेद)
2. विश्वामित्र और नदी (ऋग्वेद)
3. वामन का पराक्रम (यजुशतपथ ब्राह्मण)
4. पृथ्वी और देवयजन यजुशतपथ ब्राह्मण
5. मनु तथा मत्स्य (शतपथ ब्राह्मण)
6. इन्द्र और वृत्र (शतपथ ब्राह्मण)
7. याज्ञवल्क्य और गार्गी (शतपथ ब्राह्मण)
8. जनक और याज्ञवल्क्य (शतपथ ब्राह्मण)
9. मैत्रेयी का ब्रह्म-ज्ञान
10. देवताओं की शक्ति परीक्षा (केनोपनिषद्)
11. नचिकेता की साधना (कठोपनिषद्)
12. सत्यकाम जाबाल (छांदोग्योपनिषद्)

© NCERT
not to be republished

प्रथम खण्ड

वेद- परिचय

© NCERT
not to be republished

वेद परिचय

1. वेदों का महत्त्व

विश्व साहित्य एवं संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनकी दृढ़ आधारशिला पर भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विशाल एवं भव्य भवन प्रतिष्ठित है। ये संसार के प्राचीनतम एवं विशाल ग्रन्थ हैं। प्राचीन भारतीय ऋषियों को जो दिव्य अनुभूति हुई, वही वेद मन्त्रों के रूप में अभिव्यक्त हुई। इन मन्त्रों में विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ, ज्ञान-विज्ञान, कर्मकाण्ड, दर्शन, आयुर्वेद, वास्तुकला आदि सभी विद्याएँ समाविष्ट हैं। भारतीय विचारधारा पर वेदों का व्यापक प्रभाव है। सभी भारतीय दर्शन वेदों से अनुप्राणित हैं। वेदों से उच्चकोटि की नैतिक शिक्षा तो मिलती ही है, इनमें श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों के दर्शन होते हैं। आधुनिक विज्ञान के प्राचीनतम बीज भी वेदों में उपलब्ध होते हैं।

2. वेद क्या हैं

वेद शब्द “विद्” धातु से निष्पन्न है जिसका अर्थ है - ज्ञान, विचार, सत्ता एवं लाभ। “ज्ञान” का ही दूसरा नाम वेद है। यह वह ज्ञान है जो ब्रह्माण्ड के विषय में सभी विचारों का स्रोत है, जो सदा अस्तित्व में रहता है और जो सभी कालों में मनुष्य को उपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति और उसके उपयोग के उपाय बताता है। मनुष्य के जीवन को शुभ संस्कारों द्वारा सुसंस्कृत करने के लिए ऋषियों द्वारा अनुभूत ज्ञान वेदों में सुरक्षित है। जीवन के लिए आवश्यक ज्ञान वेदों से प्राप्त है।

3. वेदों का आविर्भाव

वेद ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्रों का संग्रह है। यह बहुत विशाल है। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार चारों वेद परमेश्वर से प्रकट हुए किन्तु आधुनिक युग में साहित्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने वेदों के आविर्भाव के काल के

विषय में पर्याप्त छान-बीन की है। अधिकांश देशी तथा विदेशी विद्वानों ने एकमत से कहा है कि वेद अति प्राचीन ग्रन्थ हैं। किन्तु इनका रचना-काल सर्वसम्मति से निर्धारित नहीं हुआ है। इस प्रसंग में विभिन्न विदेशी विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। प्रायः इनकी दृष्टि में वेदों का आविर्भाव - काल ई० पूर्व 3000 से 1000 वर्ष तक माना गया है। लोकमान्य तिलक ने वेदों को ईसा से छः हजार वर्ष पूर्व की रचना माना है। फिर भी यह तथ्य निर्विवाद है कि ऋग्वेद सम्पूर्ण विश्व साहित्य में प्राचीनतम ग्रन्थ है।

4. वेदों का विषय

वेदों में मन्त्रों का संकलन है। कुछ मन्त्र छन्दोबद्ध एवं कुछ गद्यात्मक हैं। छन्दोबद्ध मन्त्रों को “ऋक्” कहते हैं। “ऋक्” को ऋचा भी कहते हैं। इसके द्वारा देवताओं की अर्चना की जाती है। जिस वेद में ऋचाओं का संकलन है उसे ऋग्वेद कहा गया है। ये ही मन्त्र जब गेय होते हैं तब उन्हें “साम” कहा जाता है। सामों के संकलन को “सामवेद” कहा जाता है। गद्य-प्रधान वेद को यजुर्वेद कहते हैं, जो यज्ञों के लिए प्रयुक्त होता है। स्तवन, गायन और यजन इन तीन प्रमुख विषयों के कारण क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद का विभाजन किया गया है। इन्हें संयुक्त रूप से वेदत्रयी कहते हैं। जिन मन्त्रों का संग्रह अथर्वा ऋषि ने किया वे अथर्ववेद के नाम से विख्यात हैं। अथर्ववेद में विभिन्न विषय वर्णित हैं जिनमें लोकाचार, भैषज्य आदि लोक-विधाओं का भी संग्रह है।

(क) ऋग्वेद

प्राचीनता तथा विषय-वस्तु की व्यापकता के कारण ऋग्वेद को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। भाषा तथा भाव की दृष्टि से भी इसका महत्त्व अधिक है। वैदिक साहित्य में यह सर्वाधिक विशाल है।

ऋग्वेद के विभाग

ऋग्वेद का विभाजन दो क्रमों में किया गया है- 1. मण्डल-क्रम तथा

2. अष्टक-क्रम।

1. **मण्डल-क्रम**— यह क्रम अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक है। ऋग्वेद दस मण्डलों में विभक्त है। प्रत्येक मण्डल में कई अनुवाक्, प्रत्येक अनुवाक् में कई सूक्त और प्रत्येक सूक्त में कई ऋचायें होती हैं।

कात्यायन ने अपनी सर्वानुक्रमणी में विस्तार से बताया है। ऋग्वेद के दस मण्डलों के अंतर्गत पचासी (85) अनुवाक् हैं। पूरे ऋग्वेद में 1017 (एक हजार सत्रह) सूक्त हैं। इन सूक्तों के अतिरिक्त ग्यारह (11) बालखिल्य सूक्त हैं। इस प्रकार सभी सूक्तों की संख्या 1028 (एक हजार अट्ठाईस) हैं बालखिल्य सूक्तों का स्थान अष्टम मण्डल के अंतर्गत है। इस मण्डल में मुख्य सूक्त बानवे (92) ही हैं। परन्तु बालखिल्य सूक्तों सहित इस मण्डल के सूक्तों की संख्या 103 है। ऋग्वेद की मुख्य धारा से भिन्न होने के कारण स्वाध्याय के समय इन खिल सूक्तों को छोड़कर पढ़ने की भी एक परम्परा है। बालखिल्य सूक्तों के मन्त्रों की संख्या अस्सी (80) है। इन बालखिल्य सूक्तों के अतिरिक्त ऋग्वेद के अंत में परिशिष्ट के रूप में कुछ खिल सूक्त भी दिये गये हैं।

2. **अष्टक-क्रम**— इस क्रम विभाजन के अनुसार समस्त ऋग्वेद संहिता को आठ अष्टकों में बाँटा गया है। प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं और पूरा ऋग्वेद चौंसठ (64) अध्यायों का ग्रन्थ है। प्रत्येक अध्याय के अवान्तर विभागों का नाम वर्ग है जो सम्भवतः अध्ययन की सुविधा के लिए किया गया है। ऋचाओं के समूह को वर्ग कहते हैं, परन्तु वर्गों में ऋचाओं की संख्या निश्चित नहीं है। सामान्यतः पाँच मन्त्रों का एक वर्ग होता है। वैसे एक मंत्र से लेकर नौ मन्त्रों तक के भी वर्ग प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद में समस्त वर्गों की संख्या दो हजार है।

ऋग्वेद मन्त्रों की वह विशाल राशि है जिसमें अभीष्ट प्राप्ति के लिए बड़े ही सुन्दर तथा भावाभिव्यंजक शब्दों में अनेक देवताओं की स्तुतियाँ हैं। विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिरूप ये देवता एक ही परमात्मा के

रूपान्तर माने जाते हैं। इन देवताओं में तीन देवताओं की अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। अग्नि, इन्द्र एवं वरुण। उनमें भी अग्नि की प्रधानता देखी जाती है क्योंकि ऋग्वेद में सबसे अधिक ऋचाएँ अग्नि को उद्दिष्ट करके लिखी गई हैं। वृष्टि-प्रदाता इन्द्र विजय आदि का प्रेरक होने के कारण सबसे अधिक ओजस्वी तथा वीर-रस-प्रधान मंत्रों के द्वारा संस्तुत है। प्राणिमात्र की हार्दिक भावनाओं के ज्ञाता, नियमों के रक्षक तथा जल से सम्बद्ध वरुण के लिए उदात्त भावनाओं से मण्डित ऋचाएँ समर्पित हैं। देवियों में उषा, अदिति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उषा का तात्पर्य उषःकाल से है और अदिति अखण्ड सत्ता की द्योतक है। इनके अतिरिक्त सविता, पूषा, मित्र, विष्णु, रुद्र, मरुत्, पर्जन्य आदि देवताओं की स्तुतियाँ की गई हैं। भाषागत, छन्दोगत एवं दार्शनिक आदि वैशिष्ट्यों के कारण ऋग्वेद का दशम मण्डल विशेष महत्त्वपूर्ण है। दार्शनिक विचारधारा से परिपूर्ण नासदीय एवं पुरुष सूक्त इसी मण्डल में उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि “एकोडहं बहु स्याम्” (मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ) की भावना से अनुप्राणित होकर सृष्टि-रचना की और इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम पुरुष सूक्त का स्मरण किया। इसीलिए इस सूक्त के अंतर्गत दार्शनिक तत्व के साथ-साथ सृष्टि-प्रक्रिया भी सूक्ष्मतया वर्णित है। ऋग्वेद का श्रद्धा-सूक्त भी श्रद्धा-प्रेरक होने के कारण उल्लेखनीय है। श्रद्धासूक्त का प्रथम मन्त्र ही श्रद्धा की ओर संकेत करता हुआ कहता है कि किसी भी कार्य के लिए श्रद्धा की आवश्यकता होती है। बिना श्रद्धा के किया हुआ कार्य पूर्ण नहीं होता।

“संगच्छध्वं, संवदध्वम्” “अक्षैर्मा दीव्याः कृषिमित्कृषस्व०” इत्यादि सूक्तियाँ एकता, समता, दुर्व्यसन की निकृष्टता एवं कर्तव्य - निष्ठा का उपदेश करती हैं। इसी प्रकार की जीवनोपयोगी अनेक उदात्त भावनाएँ ऋग्वेद में सर्वत्र उपलब्ध हैं।

(ख) यजुर्वेद

यजुर्वेद यज्ञ कर्म के लिये उपयोगी ग्रन्थ हैं। गद्यात्मक भाग को यजुः कहा जाता है। यजुस की प्रधानता के कारण इसे यजुर्वेद कहा जाता है। इस वेद की दो परम्पराएँ हैं जो “शुक्ल” और “कृष्ण” नाम से जानी जाती हैं। इस वेद के शुक्लत्व और कृष्णत्व का भेद उसके स्वरूप के ऊपर आधारित है, अर्थात् शुक्ल-यजुर्वेद में मन्त्र-मात्र संकलित है किन्तु कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ-साथ ब्राह्मण अंश भी सम्मिलित हैं। मन्त्र तथा ब्राह्मण के सम्मिश्रण के कारण इसे कृष्ण यजुर्वेद कहा जाता है, तथा मंत्रों के विशुद्ध एवं अमिश्रित रहने के कारण स्वच्छ होने से शुक्ल यजुर्वेद माना जाता है। कृष्ण यजुर्वेद की प्रधान शाखा तैत्तिरीय तथा शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन है। भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध में यह कथा आई हुई है कि गुरु-वैशम्पायन ने शिष्य याज्ञवल्क्य से एक बार क्रोध में आकर समस्त विद्या को वापस लौटाने को कहा, तब स्वाभिमानी याज्ञवल्क्य ने अपनी सामर्थ्य से याजुष् मंत्रों का वमन कर दिया। इसके बाद गुरु के आदेश से अन्य शिष्यों ने तित्तिरिपक्षी का रूप धारण कर उगले हुए याजुष् मंत्रों का ग्रहण किया। इस मलिनकर्म के कारण भी इन्हें यजुर्वेद शब्द से पुकारा जाने लगा।

इसके बाद दुःखी याज्ञवल्क्य ने आदित्य की उपासना करके स्वच्छ याजुष् मंत्रों को दिन के मध्य भाग में प्राप्त किया। इसलिए इस वेद का नाम शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन वाजसनेय पड़ा। इसकी दूसरी शाखा “काण्व संहिता” के नाम से प्रसिद्ध है। शुक्ल यजुर्वेद संहिता में चालीस (40) अध्याय, तीन सौ तीन (303) अनुवाक् तथा उन्नीस सौ पचहत्तर (1975) कण्डिकाएँ हैं।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता सात 7 काण्ड चवालि स (44) प्रपाठक तथा छः सौ इकत्तीस (631) अनुवाकों में विभक्त है। इसकी दूसरी प्रचलित शाखा मैत्रायणी संहिता है जो चार काण्डों और चौदह प्रपाठकों में विभक्त है। इस वेद की तीसरी शाखा काठक संहिता है जिसमें पाँच (5) खण्ड चालीस (40) स्थानक, तेरह (13) अनुवाचन

और आठ सौ तिरतालीस (843) अनुवाक हैं।

यजुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय

शुक्ल यजुर्वेद में उन मन्त्रों का संग्रह है जिनका विनियोग विभिन्न योगों में किया जाता है। इसके आरम्भ के प्रथम तथा द्वितीय भाग में दर्शपूर्णमास तथा तृतीय में अग्निहोत्र एवं चातुर्मास्य यागों के मन्त्र हैं। चतुर्थ अध्याय से आठवें अध्याय की बत्तीसवीं कण्डिका तक के मन्त्रों का विनियोग अग्निष्टोम (सोमयाग) में किया गया है। नवम एवं दशम अध्याय में वाजपेय तथा राजसूय याग में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र हैं। एकादश अध्याय से अठारहवें (अष्टादश) अध्याय तक अग्नि चयन या वेदिनिर्माण में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र दिये गये हैं। इसी के अन्तर्गत सोलहवें अध्याय में शतरुद्रीय होम का प्रसंग है, जिसमें रुद्र की कल्पना का बड़ा ही सांगोपांग वर्णन है। इस अध्याय का उपयोग विविध अनुष्ठानों में होता है रुद्राभिषेक इसी अध्याय से किया जाता है। अठारहवें अध्याय में वसोर्धारा के मन्त्र विद्यमान हैं। साथ ही रुद्राध्याय का पूरक मन्त्र “चमक” (चकार बहुल मन्त्र विशेष) भी इसी अध्याय में आया हुआ है। रुद्राभिषेक के अन्तर्गत चमक की उपयोगिता भी सोलहवें अध्याय के समान मानी गयी है। उन्नीसवें से इक्कीसवें अध्याय तक “सौत्रामणी” यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र संकलित हैं। इस यज्ञ के विषय में प्रसिद्ध है कि अश्विन देवों ने रुग्ण इन्द्र को भी इसी के द्वारा स्वस्थ किया था। बाईसवें से पच्चीसवें अध्याय में “अश्वमेध” याग से सम्बन्धित मन्त्र हैं। छब्बीसवें से उनतीसवें अध्यायों में खिल (प्रकीर्ण) मन्त्रों का संकलन है। इनमें विविध अनुष्ठानों के मन्त्र संगृहीत हैं। तीसवें अध्याय में “पुरुषमेध यज्ञ” में विनियुक्त मन्त्र हैं। इक्कीसवें अध्याय में प्रसिद्ध पुरुष सूक्त है जिसमें दार्शनिक तत्त्व एवं सृष्टि-प्रक्रिया निर्दिष्ट है। बत्तीसवें तथा तैंतीसवें अध्याय में “सर्वमेध याग” के मन्त्र वर्णित हैं, और इसी के अन्तर्गत हिरण्य-गर्भसूक्त, मेधासूक्त, सूर्यसूक्त आदि प्रसिद्ध दार्शनिकसूक्त समाविष्ट हैं। इस प्रकार इन अध्यायों में उपासना की ओर भी निर्देश किया गया है। चौतीसवें

अध्याय के प्रारम्भिक छह मन्त्र शिवसंकल्प सूक्त के नाम से विख्यात हैं। इन मन्त्रों में जैसी उदात्त भावना निहित है, वह अपने आप में अद्वितीय है। पैंतीसवें अध्याय में पितृमेध (पितृ-सम्बन्धी यज्ञ) के मन्त्र छत्तीसवें अध्याय में “शान्ति मन्त्र” तथा 37 वें से 39 वें अध्यायों में उपासना से सम्बद्ध मन्त्र हैं। अन्तिम चालीसवाँ अध्याय “ईशावास्योपनिषद्” के नाम से प्रसिद्ध है। उपनिषदों में यह लघुकाय उपनिषद् संहिता का भाग नहीं है। इस प्रकार यजुर्वेद कर्म, उपासना और ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

कृष्ण यजुर्वेद में यज्ञों में प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों के साथ-साथ उपर्युक्त यज्ञों के विधि-विधान, उनसे प्राप्त होने वाले फल तथा उनसे सम्बद्ध आख्यान भी समाविष्ट हैं।

(ग) सामवेद

वैदिक संहिताओं में सामवेद का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि “वेदानां सामवेदोऽस्मि”। ऋग्वेद के गाये जाने वाले मन्त्र “साम” कहलाते हैं। “ऋच्यध्यूढंसाम” (सायण) अर्थात् ऋचा पर ही साम आश्रित है। उद्गाता नामक ऋत्विक् यज्ञ के अवसर पर देवता के स्तुति-परक इन मन्त्रों को विविध स्वरों में गाता है। सामवेद के दो प्रधान भाग हैं— आर्चिक तथा गान। ऋक् - समूह को आर्चिक कहते हैं। इसके भी दो भाग हैं - पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक में छः प्रपाठक (अध्याय) हैं। प्रत्येक प्रपाठक में दो अर्धप्रपाठक या खण्ड हैं। प्रत्येक खण्ड में एक “दशति” है, जिसमें प्रायः दस ऋचाएँ होती हैं। उत्तरार्चिक में नौ (9) प्रपाठक हैं। इसके पहले पाँच प्रपाठकों में दो भाग हैं जो अर्ध प्रपाठक कहे जाते हैं। अन्तिम चार प्रपाठकों (छः से नौ) में तीन-तीन अर्धप्रपाठक (अध्याय) हैं। दोनों आर्चिकों की सम्मिलित मन्त्र संख्या 1875 है। ऋग्वेद की 1504 ऋचाएँ सामवेद में उद्धृत हैं। सामान्यतया 75 मन्त्र सामवेद के अपने हैं। सामवेद का दूसरा भाग है गान। ऋग्वेद के भिन्न-भिन्न मण्डलों के ऋषियों के द्वारा दृष्ट ऋचाएँ एक देवता वाचक

होने से सामवेद के इस भाग में एकत्र संकलित की गई हैं और इस संकलन को पर्व या काण्ड के नाम से अभिहित करते हैं। जैसे-आग्नेय पर्व। इस पर्व के अन्तर्गत अग्नि विषयक मन्त्रों का समवाय उपस्थित किया गया है। इसी प्रकार ऐन्द्रपर्व, पवमान पर्व, आरण्यक पर्व हैं। इनके अतिरिक्त महानाम्न्यार्चिक नामक खण्ड भी है। इस वेद के विभाजन को जटिलता के कारण सम्पूर्ण संहिता में आरम्भ से ही मन्त्र संख्या दी गई है इस वेद की सर्वाधिक प्रचलित शाखा रामायणीय शाखा है। अन्य प्रसिद्ध शाखाएँ कौथुम और जैमिनीय हैं।

(घ) अथर्ववेद

वेदों में अन्यतम अथर्ववेद एक महती विशिष्टता से युक्त है। इस जीवन को सुखमय तथा दुःख रहित करने के हेतु जिन साधनों की आवश्यकता होती है उसकी सिद्धि के लिए अनेक प्रकार के अनुष्ठानों और प्रयोगों का विधान इस वेद में है। प्रत्येक पुरोहित के लिए अथर्ववेद का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि शान्ति, पौष्टिक आदि कृत्य का विधान इसी वेद में है। राष्ट्र की उन्नति के लिए इस वेद के अन्तर्गत बहुत से विधान आये हैं। इसीलिए राजा के लिए अथर्ववेद विशेष महत्त्व रखता है। “अथर्वांगिरस” भी इस वेद का एक नाम है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह वेद “अथर्वा” और “अंगिरस” नामक दो ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्रों का समवाय है। अथर्ववेद में 20 काण्ड हैं। जिनमें सात सौ इकत्तीस (731) सूक्त तथा पाँच सहस्र नौ सौ सड़सठ (5967) मन्त्र हैं। अथर्ववेद पर ऋग्वेद का स्पष्ट प्रभाव है। इसमें लगभग बारह सौ (1200) मन्त्र ऋग्वेद के ही हैं।

अथर्ववेद के प्रतिपाद्य विषयों में शान्ति-पौष्टिक के साथ-साथ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए, रोग निवारण के लिए तथा अन्य अनिष्टों से रक्षा के लिए अनेक मन्त्र विद्यमान हैं।

(ङ) अथर्ववेद में विज्ञान

अथर्ववेद के अन्तर्गत आयुर्वेद के सिद्धान्त तथा प्रयोग की अनेक

पद्धतियाँ निर्दिष्ट हैं जिनके अनुशीलन से आयुर्वेद की प्राचीनता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। रोग विशेष का उपचार जैसे- ज्वर, गण्डमाला, यक्ष्मा आदि रोगों के निवारण का उपाय बताया गया है। शल्यचिकित्सा का सूक्ष्म विवेचन अथर्ववेद में उपलब्ध है। जैसे मूत्र कृच्छ्र आदि रोग होने पर शरशलाका के द्वारा मूत्र का निष्कासन, जलधावन के द्वारा घाव का उपचार आदि अनेकों शल्य चिकित्साओं का भी वर्णन यहाँ उपलब्ध है। दैनिक गृह्यकर्मों (संस्कारों आदि) में प्रयुक्त होने वाले मन्त्र इसी वेद से संकलित हैं।

इससे स्पष्ट है कि अथर्ववेद में अनेक विधाओं को प्रधानता मिली और प्रतिदिन के जीवन के लिए उपादेय मन्त्रों का संकलन इस वेद में किया गया है। इससे तत्कालीन लोकाचारों तथा लोक विचारों का भी ज्ञान होता है। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत भूमि-सूक्त भी इसी वेद में विद्यमान है।

5. ब्राह्मण-ग्रन्थ

मूल संहिता के भाष्यों के रूप में लिखे गये ग्रन्थों को ब्राह्मण कहते हैं। ये ग्रन्थ प्रायः गद्यात्मक हैं। “ब्रह्म” शब्द के “मन्त्र” और “यज्ञ” दो प्रमुख अर्थ हैं। मन्त्रों और यज्ञों तथा इन दोनों की व्याख्या होने के कारण “ब्रह्म” शब्द से “ब्राह्मण” शब्द निष्पन्न हुआ है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों का प्रतिपाद्य-विषय

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमुख प्रतिपाद्य - विषय यज्ञ का विधि-विधान है। विषय की दृष्टि से ब्राह्मण ग्रन्थों के दो प्रमुख भाग हैं “-विधि,” और “अर्थवाद”।

विधि- यज्ञ का अनुष्ठान कब किया जाय, कैसे किया जाय, उसमें किन-किन साधनों की आवश्यकता होती है, उन यज्ञों के अधिकारी कौन-कौन होते हैं, इत्यादि विषयों का समाधान “विधि” के अन्तर्गत आता है। यज्ञ के विषय में यदि कुछ विरोध प्रतीत हो तो उसका परिहार

करना ब्राह्मणभाग का उद्देश्य है।

अर्थवाद - अर्थवाद में निन्दा एवं प्रशंसा का सन्निवेश रहता है, जिसमें याग निषिद्ध वस्तुओं की निन्दा तथा यागोपयोगी वस्तुओं की प्रशंसा होती है। अर्थवाद वैदिक मन्त्रों की पुष्टि करते हैं। ब्राह्मणग्रन्थों की यह विशेषता रही है कि इनमें यज्ञों के विधि-विधान और अर्थवाद को समझने के लिए रोचक आख्यानों का आश्रय लिया गया है। वैदिक शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए भी ब्राह्मण ग्रन्थों में व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं।

(क) ऋग्वेदीय ब्राह्मण

ऋग्वेद के “ऐतरेय” और “कौषीतकि” (शांखायन) दो प्रमुख ब्राह्मण उपलब्ध हैं। “ऐतरेय” ब्राह्मण के प्रवक्ता महीदास ऐतरेय हैं। इस ब्राह्मण की भाषा संहिता की भाषा के सन्निकट है। इस ब्राह्मण में 40 (चालीस) अध्याय हैं। तथा पाँच-पाँच अध्यायों की आठ पंचिकाएँ हैं तथा प्रत्येक अध्याय में कण्डिका की परम्परा है। ऐतरेय ब्राह्मणयज्ञ में होतृनामक ऋत्विक् के विशिष्ट कार्यकलापों का विशेष विवरण प्रस्तुत करता है। वैदिक आख्यानों की दृष्टि से यह ब्राह्मण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(ख) यजुर्वेदीय ब्राह्मण- शुक्ल यजुर्वेदीय ब्राह्मण

शुक्ल यजुर्वेद का एक मात्र शतपथ ब्राह्मण सभी ब्राह्मणग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण माना गया है। यह ग्रन्थ विशालकाय तथा यागानुष्ठान का सर्वोत्तम प्रतिपादक है। इसमें (14) चौदह (काण्ड), (100) सौ अध्याय, (68) अड़सठ प्रपाठक, चार सौ अड़तीस (438) ब्राह्मण तथा (7624) सात हजार छः सौ चौबीस कण्डिकाएँ हैं।

इस ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में दर्शपूर्णमासयज्ञ, द्वितीय में आधान आदि, तृतीय, चतुर्थकाण्डों में सोमयाग, पञ्चमकाण्ड में वाजपेययाग, तथा राजसूय याग का विवेचन है। षष्ठ से दशम काण्डों के अन्तर्गत चयन आदि का वर्णन है। अन्तिम चार काण्डों में उपनयन, स्वाध्याय, और्ध्वदैहिक (श्राद्ध), अश्वमेध आदि का वर्णन है। चौदहवें काण्ड के अन्त में विपुलकाय बृहदारण्यकोपनिषद् है।

गार्गी तथा याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ, ऋषियों की शिष्य-परम्परा तथा प्रसिद्ध मनु एवं मत्स्य की कथा शतपथ में आती है जो सर्वत्र विख्यात है। कृष्ण यजुर्वेदीय ब्राह्मण- कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रसिद्ध है। यह तीन भागों में विभक्त है जिन्हें “काण्ड” कहते हैं। प्रथम तथा द्वितीय काण्ड में आठ-आठ प्रपाठक तथा तृतीय काण्ड में 12 प्रपाठक हैं। इनके अवान्तर खण्ड ‘अनुवाक’ नाम से प्रसिद्ध हैं। इन काण्डों में अग्न्याधान, अग्निहोत्र, नक्षत्रेष्टि आदि यज्ञों का विवरण दिया गया है।

(ग) सामवेदीय ब्राह्मण

सामवेद के ब्राह्मणग्रन्थों की संख्या आठ है - ताण्ड्यमहाब्राह्मण, षड्विंश या साम विधान ब्राह्मण, आर्षेय, देवताध्याय, जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मणसंहितोपनिषद् ब्राह्मण तथा वंशब्राह्मण। इनमें ताण्ड्य महाब्राह्मण प्रमुख है। सामवेद की तण्डिशाखा से सम्बद्ध होने के कारण इसे ताण्ड्यब्राह्मणकहा जाता है। इसमें पच्चीस अध्याय हैं, इसलिये इसे पंचविंश महाब्राह्मण भी कहते हैं। यज्ञीय अनुष्ठानों में उद्गाता के कार्यों का विशद विवेचन इन ग्रन्थों में किया गया है। इसकी यह विशेषता है कि एक दिन से लेकर सहस्रवर्ष तक चलने वाले यज्ञों का विधान इसमें मिलता है। ताण्ड्य महाब्राह्मण में सोमयाग का वर्णन मुख्य रूप से है।

(घ) अथर्ववेदीय ब्राह्मण-

अथर्ववेद से सम्बद्ध केवल एक ही ब्राह्मण उपलब्ध है जो गोपथ ब्राह्मण कहलाता है। इसके दो भाग हैं - पूर्व गोपथ और उत्तर गोपथ। पूर्व गोपथ में पाँच प्रपाठक और उत्तर गोपथ में छः प्रपाठक हैं। प्रपाठकों का विभाजन कण्डिकाओं में किया गया है। कुल (258) कण्डिकायें इस ग्रन्थ में हैं। इस ब्राह्मण के प्रारंभ में स्वभावतः अथर्ववेद की महिमा गाई गयी है। द्वितीय प्रपाठक में ब्रह्मचारी के नियमों का वर्णन है। अवशिष्ट प्रपाठकों में ऋत्विजों की दीक्षा, संवत्सर सत्र, अश्वमेध आदि यज्ञों का वर्णन है।

6. आरण्यक

आरण्यक तथा उपनिषद् ब्राह्मणग्रन्थों के परिशिष्ट रूप में हैं जिनमें ब्राह्मणग्रन्थों के प्रतिपाद्य विषय से भिन्न विषयों का प्रतिपादन किया गया है। सायणाचार्य के अनुसार अरण्य (जंगल) में पढ़ने योग्य होने के कारण इनका नाम आरण्यक है। अर्थात् इन ग्रंथों के मनन का उपयुक्त स्थान अरण्य का एकान्त शान्त वातावरण है। आरण्यकों का मुख्य वर्ण्य विषय यज्ञ नहीं, प्रत्युत यज्ञों में निहित आध्यात्मिक तत्वों की मीमांसा है। प्रसिद्ध आरण्यक हैं - ऐतरेय आरण्यक शांखायन आरण्यक, बृहदारण्यक तैत्तिरीय आरण्यक आदि।

7. उपनिषद्

आरण्यक का ही विशिष्ट भाग उपनिषद् है। वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग में परिणत होने के कारण इसे “वेदान्त” कहते हैं। वेदों के दार्शनिक तत्व उपनिषद् में सार रूप में प्रकट हुए हैं। उपनिषद् वस्तुतः वह आध्यात्मिक मूल स्रोत है जिससे ज्ञान विज्ञान की भिन्न सरितायें निकल कर मानव मात्र के लौकिक एवं पारलौकिक कल्याण के लिए प्रवाहित होती हैं। उप+नि+सद् धातु से उपनिषद् शब्द निष्पन्न है जिसका अर्थ होता है गुरु के समीप बैठ कर अपने अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करते हुए ब्रह्मविद्या रूपी प्रकाश को प्राप्त करना। समस्त भारतीय दर्शनों का मूल स्रोत उपनिषद् है। उपनिषदों की संख्या में पर्याप्त मतभेद है। सामान्यतः इनकी संख्या 108 मानी जाती है ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर ये एकादश उपनिषद् प्राचीन तथा प्रामाणिक मानी जाती हैं। अन्य मत के अनुसार श्वेताश्वतर के स्थान पर केवल्योपनिषद् को एकादश उपनिषदों में गिना गया है।

इसके अतिरिक्त कौषीतकि, तथा मैत्रायणी उपनिषद् को भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आद्य शङ्कराचार्य जी ने प्रसिद्ध उपनिषद् पर अपना

महत्त्वपूर्ण भाष्य किया है। ब्राह्मण एवं आरण्यक की तरह उपनिषद् भी विभिन्न वेदों से सम्बद्ध हैं।

वैदिक साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों (संहिता ब्राह्मण आरण्यक एवं उपनिषद्) तथा उनके परस्पर सम्बन्ध का सामान्य परिचय अधो-लिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

8. प्रमुख उपनिषदों का परिचय

1. ईशोपनिषद्— शुक्ल यजुर्वेद संहिता के चालीसवें अध्याय के कुल (18) अठारह मन्त्र ही ईशोपनिषद् के नाम से विख्यात हैं। इसके प्रथम दो शब्दों “ईशावास्यम्” (या ईशावास्योपनिषद्) प्रचलित है। निष्काम कर्म एवं अद्वैत भावना इस उपनिषद् का प्रतिपाद्य विषय है। यह उपनिषद् गीता के कर्मयोग का आधार है। यह उपनिषद् ज्ञान, कर्म और उपासना का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करती है। अतः इसे महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रन्थ माना गया है। उपनिषदों में यह प्राचीनतम उपनिषद् है।

2. केनोपनिषद्— “केनेषितं पतति” इत्यादि मन्त्र के प्रथम शब्द के आधार पर इसका नाम “केनोपनिषद्” पड़ा है। इस उपनिषद् के चार खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में उपास्य ब्रह्म के रहस्यमय रूप का विवेचन तथा तृतीय एवं चतुर्थ खण्डों में उमा हैमवती के सुमधुर आख्यान के माध्यम से परब्रह्म की सर्वशक्ति तथा देवताओं की अल्पशक्ति का व्याख्यान किया गया है।

3. कठोपनिषद्— यम और नचिकेता के संवाद के रूप में ग्रथित “कठोपनिषद्” कृष्ण यजुर्वेद की कठशाखा से सम्बद्ध है। इसमें दो अध्याय हैं। यम-नचिकेता के मार्मिक कथोपकथन द्वारा ऐहिक जगत की नश्वरता तथा ब्रह्म की नित्यता का निरूपण करते हुए “तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः” के द्वारा श्रेय (जीवन का कल्याणकारी मार्ग) मार्ग के अनुसरण का इसमें उपदेश है। इस उपनिषद् में श्रेय एवं प्रेय (विषय वासना का मार्ग) का दिग्दर्शन कराते हुए श्रेय मार्ग को श्रेष्ठ बतलाया गया

है।

4. प्रश्नोपनिषद्— अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा से सम्बद्ध प्रश्नोत्तर शैली में होने के कारण यह “प्रश्नोपनिषद्” नाम से विख्यात है। इसमें ब्रह्मविद्या के अन्वेषण से सम्बद्ध छह प्रश्नों का समाधान किया गया है। इन प्रश्नों के उत्तर में अध्यात्म की समस्त समस्याओं का विवेचन बड़ी सुन्दरता तथा गम्भीरता से किया गया है। निष्कर्ष में महर्षि ने अक्षर ब्रह्म को ही जगत् का आधार बताया है।

5. मुण्डकोपनिषद्— यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इसमें तीन मुण्डक एवं छह खण्ड हैं। इस उपनिषद् में ब्रह्मा द्वारा अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया गया है। इसमें याज्ञिक अनुष्ठान तथा कर्म काण्ड की हीनता का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। सांख्य एवं वेदान्त के सिद्धान्त भी इस उपनिषद् से प्रभावित हैं। द्वैतवाद का प्रसिद्ध वाक्य (द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया) अर्थात् - आत्मा और परमात्मा रूपी दो सुन्दर पक्षी परस्पर सख्यभाव से सम्पृक्त हैं - इसी उपनिषद् में सन्निहित हैं।

6. माण्डूक्योपनिषद्— इस उपनिषद् में बारह खण्ड या वाक्य हैं जिनमें ओउम्कार तथा आत्मा का बड़ा ही तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ॐ कार की मार्मिक व्याख्या का श्रेय इसी उपनिषद् को प्राप्त है। इसके अतिरिक्त चैतन्य की चार अवस्थाओं - जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तथा चैतन्य का भी विशद विवेचन इसमें किया गया है। इस उपनिषद् में आत्मा के विभिन्न रूपों का भी वर्णन उपलब्ध होता है।

7. तैत्तिरीयोपनिषद्— यह उपनिषद् तैत्तिरीया आरण्यक के सप्तम, अष्टम तथा नवम खण्डों का अंश है। इस उपनिषद् को शिक्षावल्ली ब्रह्मवल्ली तथा भृगुवल्ली के नाम से त्रिधा विभक्त किया गया है। इसमें ब्रह्मविद्या, चित्त शुद्धि, गुरुकृपा उपासना प्रकार, शिष्य-आचार्यसम्बन्धी शिष्टाचार तथा शिक्षा के उच्चादर्शों का विवेचन है। इस उपनिषद् में आचार्य का

अपने शिष्य को दिये गये अनुशासनात्मक उपदेशों का विशद वर्णन है।

8. ऐतरेयोपनिषद्— ऐतरेयाण्यक के द्वितीय आरण्यक के चतुर्थ, पञ्चम एवं षष्ठ अध्यायों का नाम ही ऐतरेयोपनिषद् है। इस उपनिषद् में तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में तीन द्वितीय में एक तथा तृतीय में भी एक खण्ड है। इस उपनिषद् में सृष्टि - तत्व का हृदयस्पर्शी वर्णन है। मानव शरीर को परमात्मा की प्राप्ति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन स्वीकार किया गया है, जिसमें गुरुकृपा को ईश्वर साक्षात्कार के लिए विशेष साधन निरूपित किया गया है। “प्रज्ञान” (ब्रह्मज्ञान) की भी इस उपनिषद् में विशेष महिमा प्रदर्शित है। यह उपनिषद् आदर्शवाद का सफल प्रतिपादक है।

9. छान्दोग्योपनिषद्— यह उपनिषद् सामवेद से सम्बद्ध है। अपनी प्राचीनता, गम्भीरता तथा ब्रह्मज्ञान विवेचन की दृष्टि से समस्त उपनिषद् में यह प्रमुख माना जाता है। इसमें आठ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में अनेक विधाओं (अध्यात्म विषयों) ओंकार आदि विषयों के गूढ़ स्वरूप का निरूपण किया गया है। द्वितीय अध्याय में भौतिक स्वार्थपूर्ति के निमित्त यागानुष्ठान तथा सामगान करने वाले व्यक्तियों पर मार्मिक व्यंग्य हैं। तृतीय अध्याय से सूर्य की उपासना तथा गायत्री मन्त्र का तात्त्विक वर्णन है। चतुर्थ अध्याय में रैक्व ऋषि का दार्शनिक तथ्य तथा सत्यकाम जाबाल

ऋषि द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का विस्तृत एवं रोचक वर्णन है। पञ्चम अध्याय में यज्ञ के दार्शनिक सिद्धान्तों का तथा केकय - अश्वपति के सृष्टि विषयक तथ्यों का निरूपण है। षष्ठ अध्याय इस उपनिषद् का सर्वाधिक प्रभावशाली अंश है, जिसमें महर्षि आरुणि के अद्वैत प्रतिपादक सिद्धान्तों की रोचक व्याख्या है। सप्तम अध्याय सनत्कुमार तथा नारद के माध्यम से आत्म-विद्या की प्राप्ति के सिद्धान्त का निरूपण करता है। अन्तिम (अष्टम) अध्याय इन्द्र तथा विरोचन की आत्मज्ञान जिज्ञासा - विषयक कथा से सम्बद्ध है। इस उपनिषद् के अन्तिम तीनों अध्याय अध्यात्मज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

10. *बृहदारण्यकोपनिषद्*— यह उपनिषद् आकार की दृष्टि से जितना बड़ा है उतना ही तत्त्वज्ञान के विवेचन में अत्यन्त गूढ़ एवं प्रामाणिक है। इस उपनिषद् के दार्शनिक केन्द्र बिन्दु महर्षि याज्ञवल्क्य हैं जिनकी उदात्त आध्यात्मिक शिक्षा से यह उपनिषद् पूर्णतः आप्लावित है। इसमें छः अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में प्राण की श्रेष्ठता तथा सृष्टि विषयक सिद्धान्त वर्णित है। द्वितीय अध्याय में गार्ग्य तथा अजातशत्रु का रोचक संवाद है। इसी अध्याय में महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा अपनी भार्या मैत्रेयी को दिव्य दार्शनिक सन्देश देने का वर्णन है। तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में जनक तथा याज्ञवल्क्य का सुन्दर संवाद है। पञ्चम अध्याय में नीति, सृष्टि तथा परलोक विषयक तथ्यों को उद्घाटित किया गया है। षष्ठ अध्याय में प्रवाहण जैवलि तथा श्वेतकेतु आरुणेय का दार्शनिक संवाद वर्णित है। यह उपनिषद् याज्ञवल्क्य के तत्व-ज्ञान का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

11. *कैवल्योपनिषद्*— यह उपनिषद् (28) अट्ठाईस मन्त्रों से निबद्ध है जिसमें कैवल्य प्राप्ति के लिए साधना को महत्त्व प्रदान किया गया है। इसमें आत्मनियन्त्रण के लिए आत्म-चिन्तन को भी आधार माना गया है। महावाक्यार्थ के द्वारा शिव को परम तत्व के रूप में निरूपित किया गया है।

12. श्वेताश्वतरोपनिषद् - इस उपनिषद् में शैव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसके छः अध्याय हैं। शैव मत के अतिरिक्त योग तथा गुरुभक्ति का विवेचन किया गया है। गुरुभक्ति को देवभक्ति का ही रूप माना गया है। भक्तितत्व का बहुत ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है।

9. प्रमुख वैदिक ग्रन्थों की तालिका

© NCERT
not to be republished

10. वैदिक परिभाषाएँ

मन्त्र— यास्क के अनुसार “मन्त्राः मननात्” अर्थात् जिसका मनन किया जाता है उसे मन्त्र कहते हैं। इस प्रकार मन्त्र विविध ज्ञान के भण्डार हैं। इसके अतिरिक्त “कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे” इस लक्षण के द्वारा यह भी सिद्ध होता है कि यज्ञ कर्मसम्पादन करने के लिए ऋषि-दृष्ट वाक्य को मन्त्र कहते हैं। जैसे - अग्निमीडे पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्। “इत्यादि।

संहिता—मन्त्रों के संकलन का नाम संहिता है जो चार नामों से अभिहित हैं। ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता, और अथर्ववेद संहिता।

ब्राह्मण—वैदिक साहित्य का दूसरा भाग ब्राह्मण है। इसका लक्षण करते हुए जैमिनी कहते हैं कि -“शेषे ब्राह्मणशब्दः” अर्थात् मन्त्रों के अतिरिक्त यागों के विधि-विधान मन्त्रों का विनियोग तथा मन्त्र सम्बन्धी विवेचन आदि जिन ग्रन्थों में किया गया है उन्हें ब्राह्मणकहते हैं।

ऋषि—“ऋषयोमन्त्र दृष्टारः” अर्थात् मन्त्रों के दर्शन (अनुभूति) करने वाले व्यक्तियों का ही नाम ऋषि है। अतएव जिन-जिन मन्त्रों के जिन-जिन ऋषियों ने दर्शन किये हैं, उन उन मन्त्रों के वे ऋषि कहे जाते हैं। इन ऋषियों में वसिष्ठ, गौतम, विश्वामित्र जमदग्नि, भरद्वाज, अङ्गिरा, गृत्समद आदि प्रसिद्ध हैं।

छन्द—अधिकांश मन्त्र छन्दोबद्ध हैं इसीलिए वेद का एक नाम “छन्दस्” भी है। कात्यायन के अनुसार “यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः” अर्थात् अक्षरों के

नियत परिमाण को छन्द कहते हैं। छन्द का बन्धन पूर्णरूप से ऋग्वेद में उपलब्ध है। उन छन्दों में गायत्री, चिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, बृहती, उष्णिक्, पङ्क्ति आदि प्रसिद्ध हैं। इनमें गायत्री सर्वाधिक प्रसिद्ध छन्द है। स्पष्ट बोध के लिए छन्द-तालिका प्रस्तुत है।

छन्द - गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती पंक्ति त्रिष्टुप् जंगती अक्षरसंख्या

24 28 32 36 40 44 48

छन्दों के कारण आज वेद मन्त्र के अन्तर्गत एक वर्ण का भी प्रक्षेप नहीं हो पाया है। इस प्रकार मन्त्र गणना, पदगणना, तथा “अक्षर-गणना के कारण वेद अपने मूल रूप में उपलब्ध हैं। मद्धास वाजुष” “इषे त्वोर्जेत्वा” इत्यादि भी छन्दोबन्धन से मुक्त नहीं है।

देवता- आचार्य यास्क के अनुसार “ एक एवं आत्मा बहुधा स्तूयते” सभी देवता एक ही परम सत्ता के विभिन्न रूप हैं। किसी सूक्त अथवा मन्त्र का देवता उस सूक्त अथवा मन्त्र के विषय का निर्देश करता है। यास्क के अनुसार मुख्यतः तीन देवता हैं। अग्नि, इन्द्र, वायु तथा सूर्य। अग्नि पृथ्वी स्थानीय देवता हैं। इन्द्र (वायु) का स्थान अन्तरिक्ष है और द्युलोक स्थान है आदित्य (सूर्य) का विशेष रूप से किसी यज्ञ कर्म के लिए किसी मन्त्र को विनियुक्त करना विनियोग पद का अर्थ है। यज्ञ कर्म में मन्त्रों के विनियोग की विधि ब्राह्मणग्रन्थों के विधि वाक्यों में विशेष रूप से बताई गई है। उदाहरणार्थ “इषे त्वेति छिनत्ति” इत्यादि ब्राह्मण के विधि वाक्य के द्वारा “इषे त्वा, ऊर्जे त्वा इत्यादि मन्त्र का कार्य स्पष्ट हो जाता है।

विभिन्न शाखा के स्रोत सूत्रों एवं गृह्य सूत्रों में अधिक स्पष्ट रूप से मन्त्रों के विनियोग का निर्देश किया गया है।

श्रोत्र सूत्र गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र एवं शुल्बसूत्र सामूहिक रूप से कल्पसूत्र कहे जाते हैं। ये सूत्र वेद विहित कर्मों को क्रमपूर्वक व्यवस्थित करने वाले शास्त्र हैं। श्रोत सूत्रों में दर्शपूर्णमास अश्वमेध, राजसूय इत्यादि बड़े यज्ञों तथा संस्कारों का विवरण प्रस्तुत करते हैं। धर्मसूत्रों के आचार-व्यवहार

तथा कर्त्तव्याकर्तव्य - संबंधी विषयों का प्रतिपादन है। शुल्ब सूत्र ज्यामिति (रेखागणित तथा त्रिकोणमिति) के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इनमें यज्ञों के वेदिनिर्माण का विशद वर्णन है।

11. मन्त्रपाठ के भेद -

पहले चर्चा हो चुकी है कि वेद के गद्य, पद्य तथा गान ये तीन रूप हैं। ऐसी परिस्थिति में पद्यात्मक, गद्यात्मक और गेय इन तीनों के पाठ की अपनी-अपनी परम्परायें हैं। वेदपाठ की विशिष्टता यह है कि इसका सस्वर पाठ होता है। स्वर को आत्मा कहा गया है। स्वर-पाठ की रक्षा बड़ी सतर्कता से ऋषियों ने की है। मूल रूप से प्रचलित सस्वरपाठ संहिता पाठ है। इसी पाठ का प्रयोग सभी यज्ञादि कर्मों में किया जाता है।

1. संहिता की परिभाषा करते हुए महावैयाकरण पाणिनि ने कहा है कि “- परः सन्निर्कषः संहिता” अर्थात् वर्णों की अतिशय निकटता को संहिता कहते हैं।

2. पदपाठ - कात्यायन ने पद का लक्षण देते हुए लिखा है “पदच्छेदेऽसंहितः” अर्थात् पदपाठ में संहिता के शब्दों को सन्धि-विच्छेद के द्वारा अलग-अलग करके रखा जाता है।

3. क्रमपाठ - “क्रमेण पदद्वयः पाठः” क्रम से दो पदों का पाठ क्रम पाठ कहलाता है। इन तीनों को प्रकृतिपाठ कहते हैं। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं: -

1. संहिता पाठ

ओषधयः संबदन्ते सोमन सहराज्ञा ॥

ऋग्0 10/97/221

2. पदपाठ

1 2 3 4 5 6

ओषधयः सम् / बदन्ते/ सोमेन / सह/ राज्ञा

3. क्रमपाठ

1 2 3 4 5
6

ओषधयः सं / सं बदन्ते/ बदन्ते सोमेन / सोमेन सह/ राज्ञा / राज्ञेति
राज्ञा।

विकृतिपाठ—प्रकृतिपाठ के अतिरिक्त विकृति पाठ भी होते हैं। ये विकृतिपाठ आठ प्रकार के होते हैं जो – जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, तथा घन नाम से प्रचलित हैं।

“जटा माला शिखा रेखा ध्वजो दण्डोरथो घनः
अष्टौविकृतयः प्रोक्ताः क्रम पूर्वामहर्षिभिः॥

विकृतिपाठ मुख्यतः संहिता, पद और क्रम पर आश्रित होता है। संहिता और पदपाठ में मौलिक अन्तर कोई नहीं है किन्तु पदविच्छेद होने के कारण स्वर में पर्याप्त अन्तर हो जाता है। क्रम से दो पदों का पाठ क्रमपाठ कहलाता है।

1. **जटा पाठ** – “अनुलोमविलोमाभ्यां त्रिवारं हि पठेत्क्रमम्।
विलोमे पदवत्सन्धिः अनुलोमे यथाक्रमम्॥”

अर्थात् अनुलोम एवं विलोम से क्रम जब तीन बार पढ़ा जाता है और विलोम में पद के समान सन्धि होती तथा अनुलोम में क्रम के अनुसार सन्धि होती है तो वह जटा पाठ होता है। जैसे

1 2 2 1 2

ओषधयः सं, समोषधयः, ओषधयः सम्।

2 3 3 2 3 2

सं वदन्ते, बदन्ते सं, सं वदन्ते।

2. **शिखा पाठ**— जब जटा पाठ से अगला एक पद जोड़ दिया जाता है तो उसी का नाम शिखा हो जाता है। “पदोत्तरा जटामेव शिखामार्या प्रचक्षते।” जैसे –

ओषधयः सं, समोषधयः ओषधयः सं-वदन्ते।

सं वदन्ते, बदन्ते सं, सवदन्ते - सोमेन॥

3. माला पाठ : ब्रूयात् क्रमविपर्यासा वर्धर्वस्यादितोऽन्ततः
अन्तञ्चादिं नयेदेवं क्रममालेति गीयते ॥

अर्थात् आधी ऋचा के आदि से अन्त तक उल्टा करने पर अन्त को आदि से अन्त तक उल्टा करने पर अन्त को आदि में और आदि के पदों को अन्त में रखने क्रम माला कही जाती है। यथा-ओषधयः सं। राज्ञेतिराज्ञा। सं वदन्ते। राज्ञा सह। बदन्ते सोमेन। सहसोमेन॥ सोमेन सहा सोमेन बदन्ते। सह राज्ञा। बदन्ते सं। राज्ञेति राज्ञा समोषधयः॥

4. रेखा लक्षण - क्रमाद्द्वित्रिचतुष्कञ्च पदक्रममुदाहरेत्।
पृथक् पृथक् विपर्यस्य लेखांमाहुः पुनः क्रमात्॥

अर्थात् क्रम से दो, तीन और चार पदसमूह के क्रम को कहने पर फिर उनके क्रम को अलग-अलग उल्टा करके पाठ करने से और फिर उल्टा करके पढ़ने पर रेखा बन जाती है। यथा -

पदद्वयः ओषधयः सं। समोषधयः। ओषधयः सम्।

पदत्रय- सं वदन्ते सोमेन। सोमेन बदन्ते सं। सं वदन्ते।

पदचतुष्क - बदन्ते सोमेन सह राज्ञा। राज्ञा सह सोमेन बदन्ते।

बदन्ते सोमेन सोमेन सह। सह राज्ञा राज्ञेतिराज्ञा।

5. ध्वज लक्षण - ब्रयादादेः क्रमं सम्यगन्तादुत्तारयेद्यदि।
वर्मेच ऋचि वा यत्र पठनं ध्वजः स्मृतः॥

अर्थात् वर्ग या ऋचा में जहाँ पाठ करना हो उसको यदि पहले आदि के क्रम से फिर अन्त के क्रम ठीक प्रकार पाठ किया जाय तो वह ध्वज बन जाता है।

6. दण्ड लक्षण

“क्रममुक्त्वा विपर्यस्य पुनश्य क्रममुत्तरम्।
अर्धादेवमुक्तोऽयं क्रमदण्डोऽभिधीयते॥”

अर्थात् आधी ऋचा के विपर्यय के क्रम को कहकर और फिर उसके उत्तर क्रम को कहने पर दण्ड नामक विकृति हो जाता है।

यथा - ओषधयः सं। समोषधयः। ओषधयः सं संवदन्ते।

वदन्ते समोषधयः। ओषधयः सं सं वदन्ते वदन्ते सोमेन।

सोमेन बदन्ते समोषधयः। ओषधय सं सं वदन्ते।

वदन्ते सोमेन। सोमेन सह। सह सोमेन बदन्ते समोषधयः।

7. रथलक्षणम् - “पादशोऽर्धर्चशोवापि सहोक्त्या दण्डवद्रथः।”

अर्थात् पाठ के साथ या आधी ऋचा के साथ भी एक साथ पाठ करने से रथ नामक विकृति होती है। यथा -

ओषधयः संऽयस्मैकृणोति एकतात्क्रमः

समोषधयः कृणोति यस्मै व्युत्क्रमः।

8. घनलक्षणम् - शिखामुक्त्वा विपर्यस्य तत्पदानिर्य पुनः

पठेत्। अयं इति प्रोक्तः।

अर्थात् विपर्य की शिक्षा को कहकर और उसके पदों को फिर से पाठ करने पर घन पाठ होता है।

यथा-

ओषधयः सं समोषधयः ओषधयः संवदन्ते । शिखा
 बदन्ते समोषधयः ओषधयः संवदन्ते । विपर्ययः
 संवदन्ते वदन्ते सं सं वदन्ते सोमेन। शिखा
 सोमेन वदन्ते सं सं वदन्ते सोमेन। विपर्ययः

12. स्वर-विचार

वेद पाठ के अन्तर्गत उदात्तदि स्वरों की सत्ता वैदिक भाषा की विशेषता है। प्रत्येक अक्षर का उच्चारण किसी न किसी स्वर के साथ होता है। उपलब्ध सभी मन्त्र-सहिताओं में स्वर के चिह्न लगे हुए हैं। ब्राह्मणग्रन्थों में भी शतपथ ब्राह्मणतैत्तिरीय तथा ऐतरेय ब्राह्मण आदि में भी स्वर चिह्न लगे हुए हैं। अक्षर उच्चारण में दो प्रकार के स्वर लगाये जाते हैं।

1. आरोह तथा 2. अवरोह का। एक तीसरा स्वर भी है जिसमें आरोह एवं अवरोह का सम्मिश्रण हो जाता है। इन स्वरों को उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित नाम से जाना जाता है।

(क) **उदात्त स्वर**—आरोह अर्थात् ऊँचे स्वर में बोले जाने वाले अक्षर को उदात्त कहते हैं, इसे प्रदर्शित करने के लिए किसी चिह्न का प्रयोग नहीं होता है।

(ख) **अनुदान्तस्वर**—अवरोह अर्थात् नीचे स्वर में बोला जाने वाला अक्षर को अनुदान्त कहलाता है अनुदान्त को प्रदर्शित करने के लिए अक्षर के नीचे एक पड़ी रेखा (-) दी जाती है।

(ग) **स्वरित**—स्वरित में आरोह और अवरोह दोनों का सम्मिश्रण होता है। इसे अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा (।) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। स्वरित के आठ भेद होते हैं—जात्य, अभिनिहित, क्षैप्र, प्रशिल्ष्ट, तैरोव्यज्जन, तैरोभिराम, पादवृत्त एवं ताथा भाव्य।

याज्ञवल्क्य शिक्षा में लिखा गया है—

अष्टौ स्वरान् प्रवक्ष्यामि तेषामेव तु लक्षणम्।

जात्योऽभिनिहितः क्षैप्रः प्रशिल्ष्टश्च तथा परः ॥

तैरोवयज्जनसंज्ञश्च तथा तैराऽभिरामकः

पादवृत्तो भवेत्तद्वृत्त ताथाभाव्य इति स्वराः॥

13. शाखा-भेद तथा उच्चारण विषयक नियम

चारों वेद ग्यारह सौ इकत्तीस शाखाओं में पल्लवित हुए हैं। यहाँ शाखा पद पारिभाषिक है। लोक व्यवहार की तरह अवयव का वाचक नहीं है अपितु प्रत्येक शाखा अपने में पूर्ण एवं स्वतन्त्र है। प्रायः सभी शाखाओं की उच्चारण पद्धति स्वतन्त्र है। अतएव प्रातिशाख्यशास्त्र का आविर्भाव हुआ। प्रातिशाख्य शब्द की व्युत्पत्ति कराते हुए अचार्य उव्वट की उक्ति है कि—

“शाखा शाखा प्रति यदुच्यते तत्प्रातिशाख्यम्” अर्थात् प्रत्येक शाखा के लिए जो शास्त्र उच्चारण के नियम बनाता है वह प्रातिशाख्य है। इतना ही नहीं वर्णोच्चारण की शिक्षा देने वाले शिक्षा ग्रन्थ भी प्रायः प्रतिशाखा के लिए स्वतन्त्र हैं। शिक्षा एवं प्रातिशाख्य दोनों विशेष रूप से अपनी-अपनी शाखाओं के उच्चारण सम्बन्धी नियमों का निर्देश करते हैं। ऋग्वेद के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ण का उच्चारण अर्धमात्रिक होता है। किन्तु यजुर्वेद माध्यदिन शाखा में हर पदान्तिक हल् वर्ण का द्विमात्रिक या त्रिमात्रिक उच्चारण होता है। इस विषय में याज्ञवल्क्य शिक्षा में कहा गया है—

“ ऋचोऽर्धे तु द्विमात्रः स्यात् त्रिमात्रः स्यादहगन्तके ”

अर्थात् ऋचा के अर्ध भाग पर हल् वर्ण का भी द्विमात्रिक तथा ऋचा के अन्तिम भाग में स्थित हल का त्रिमात्रिक उच्चारण होता है। उदाहरण स्वरूप -

“गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे,

प्रियनान्त्वा प्रियपतिं हवामहे।

निधीनान्त्वा निधिपतिं हवामहे,

वसो मम आहम जानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्॥”

इस मंत्र में “गर्भधम्” पद में हल् मकार का त्रैमात्रिक उच्चारण “गर्भधम्” है। ऋग्वेद में यकार का उच्चारण यकार ही होता है किन्तु यजुर्वेद माध्यदिन में पाद के आदि में यकार की स्थिति को जकार में उच्चरित किया जाता है। इसी प्रकार यदि मध्य में भी हो, किन्तु ऊष्मा वर्ण का संयोग हो जाय तो वहाँ भी जकार ही उच्चरित किया जाता है। उदाहरण - “यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः मत्र में पदादि एवं पदादि यकार का उच्चारण यकार होता है जकार नहीं किन्तु इस नियम का भी अपवाद ‘रो’ इत्यादि में ऐसा आता है कि के संयोग में मध्य में स्थित यकार का भी उच्चारण जकार होता है। इसी प्रकार षकार का ख कारोच्चारण ऋकार का रेकारोच्चारण आदि विशेष नियम है। सामवेद में भी उच्चारण प्रक्रिया ऋग्वेद एवं यजुर्वेद से भिन्न है। इस प्रकार ऋक्, यजु, और साम तीनों की उच्चारण प्रक्रिया और इसके अन्तर्गत अपनी-अपनी शाखाओं का भी उच्चारण क्रम अलग-अलग है। शाखा भेद से पाठ भेद भी है। प्रसिद्ध “पुरुष-सूक्त” में ऋग्वेद में “सभूमिं विश्वतो वृत्या” यजुर्वेद माध्यन्दिन में - “संभूमिं सर्वतस्पृत्वा” ऐसा पाठ भेद है। अवान्तर पाठ भेद भी दृष्टिगोचर होता है। जैसे “त्वार्ज्जत्वा” मंत्र में कृष्ण यजुर्वेद में “उषावयस्थ” का शुक्लयजुर्वेद में “वाषवस्थ” पाठ भेद भी उपलब्ध है।

14. वेदाङ्ग-परिचय

वेद को समझने के लिए वेद के अङ्गों का ज्ञान होना भी आवश्यक है। ऋषियों ने वेद-पुरुष की कल्पना की है जिसके छः अङ्ग माने गये हैं - छन्द, कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा तथा व्याकरण। इन्हें ही वेदाङ्ग शब्द से अभिहित किया गया है।

1. छन्द- छन्द वेद के चरण हैं। इनमें गायत्री, ऋष्टुप्, जगती आदि छन्द आते हैं। वेदों के मन्त्र इन्हीं प्राचीन छन्दों में निबद्ध हैं।

2. **कल्प**— कल्प के अन्तर्गत प्रसिद्ध कल्प सूत्रों का निर्माण हुआ है। कल्प का अर्थ है विधि, नियम, न्याय और आदेश आदि। इन्हें संक्षेप में रखने से सूत्र बन जाते हैं। विधि-विधान आदि का निर्दोष रूप में विवेचन सूत्रों का प्रतिपाद्य विषय है। कल्प सूत्रों के तीन मुख्य भाग हैं— (i) श्रौतसूत्र (ii). गृह्यसूत्र (iii). धर्मसूत्र। कल्प को वेदपुरुष का हाथ माना गया है।

3. **ज्योतिष**—ज्योतिष को वेद का नेत्र माना गया है।

4. **निरुक्त**— निरुक्त का अर्थ है शब्द का ज्ञान तथा उसकी व्युत्पत्ति। दुरुह वैदिक शब्द का अर्थ जानने के लिए उनकी व्युत्पत्ति और अर्थ जानना आवश्यक होता है। आचार्य यास्क ने निरुक्त की रचना की है। निघण्टु भी एक प्राचीन ग्रन्थ रही है। इसी की व्याख्या निरुक्त है। निरुक्त को वेद पुरुष का श्रोत्र कहा गया है।

5. **शिक्षा**— वेद-मन्त्रों के उच्चारण की विधियाँ शिक्षा-शास्त्र में वर्णित हैं। वेदों की उच्चारण पद्धति बड़ा महत्त्व रखती है। वैदिक स्वर प्रक्रिया इसी के अन्तर्गत आती है। वेद-पाठ के शुद्ध उच्चारण तथा उचित स्वर का होना आवश्यक है। शिक्षा को वेद पुरुष की नासिका कहा गया है।

6. **व्याकरण**— व्याकरण को वेदपुरुष का मुख कहा गया है। शब्द की व्युत्पत्ति इसी व्याकरण के द्वारा की जाती है। वेद की विभिन्न शाखाओं के व्याकरण ग्रन्थों को प्रातिशाख्य कहते हैं।

वेद के सम्यक्— ज्ञान के लिए वेदांगों का अध्ययन आवश्यक माना गया है।

© NCERT
not to be republished

द्वितीय खण्ड

वेदवाणी

ऋग्वेदसंहिता

अग्निसूक्तम् (I.1.1-3,6-9)

इस सूक्त के ऋषि मधुच्छन्दा (विश्वामित्र के पुत्र) हैं। पूरे सूक्त में गायत्री छन्द है। अग्नि को देवता के रूप में देखकर उसका वर्णन यहाँ किया गया है। पूरे ऋग्वेद में अग्नि के 200 सूक्त हैं। अग्नि प्रकाश, उष्णता और दिव्य शक्ति का प्रतीक है। देवताओं में अग्रणी होने के कारण इसे अग्नि कहा गया है। वैदिक ऋषियों ने अग्नि से प्रकाश, उत्तम धन एवं सद्गुणों की याचना की है।

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नधातमम्॥1॥

अग्निः पूर्वोभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।

स देवाँ एह वक्षति ॥2॥

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।

यशसं वीरवत्तमम् ॥3॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।

तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः॥4॥

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।

नमो भरन्त एमसि ॥5॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।

वर्धमानं स्वे दमे ॥6॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।

सचस्वा नः स्वस्तये ॥7॥

1. मैं (यज्ञस्य पुरोहितम्) यज्ञ के पुरोहित-स्वरूप या पूर्वभाग में स्थापित, (देवम्) दानादिगुण-युक्त, (होतारम् ऋत्विजम्) होतृनामक ऋत्विक्¹ तथा (रत्नधातमम्) सर्वाधिक धन प्रदान करने वाले (अग्निम्) अग्निदेवता को (ईच्छे) पूजता हूँ।
2. (अग्निः) अग्निदेवता (पूर्वेभिः) पूर्वकाल के भृग, अंगिरा आदि (ऋषिभिः) ऋषियों के द्वारा (उत) तथा (नूतनैः) नवीन ऋषियों के द्वारा भी (ईड्यः) स्तुति के योग्य है। (सः) वह अग्निदेवता (इह) इस स्थान पर (देवान्) अन्य देवताओं को (आवक्षति) ले आये।
3. कोई व्यक्ति (अग्निना) अग्निदेव के द्वारा (दिवेदिवे) प्रतिदिन (पोषम् एव) बढ़ता ही जाने वाला, (यशसम्) यश प्रदान करने वाला तथा (वीरवत्तमम्) सर्वाधिक वीर पुरुषों से संयुक्त (रयिम्) धन (अश्नवत्) प्राप्त कर सकता है।
4. (अग्न्य अग्ने) हे अग्निदेव ! (दाशुषे) हव्यप्रदान करने वाले यजमान का (यत् त्वम् भद्रं करष्यसि) जो तुम कल्याण करोगे, (अद्यिगरः) हे अंगिरा अर्थात् अग्निदेव ! (तव इत्) तुम्हारे लिए ही (तत्सत्यम्) वह बात सत्य है।
भावार्थ - अग्निदेव द्वारा यजमान का जो कल्याण होता है, वह कभी असत्य नहीं होता।
5. (दोषावस्तः) रात्रि के अन्धकार को दूर करने वाले (अग्ने) हे अग्नि देव ! (त्वा उप) तुम्हारे समीप (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वयम्!) हम लोग (धिया) अपनी बुद्धि से (नमः भरन्तः) नमस्कार करते हुए (एमसि) आ रहे हैं।

1. ऋत्विज् - ऋतु अर्थात् समय पर यज्ञ कराने वाला। इनके चार भेद हैं - होता (देवताओं का आवाहन करने वाले), उद्गाता (गान गाने वाले), अध्वर्यु (यज्ञ का संचालन करने वाले) तथा ब्रह्मा (सभी अनुष्ठानों को अनुमति देने वाले)। इनमें प्रथम तीन का क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेद से संबन्ध है, ब्रह्मा तीनों से संबद्ध है। यहाँ अग्नि को होतृनामक ऋत्विज् कहा गया है।

6. (राजन्तम्) देदीप्यमान (अध्वराणाम्) राक्षसादि के द्वारा की गयी हिंसा अर्थात् विध्वंस से रहित यज्ञों के (गोपाम्) रक्षक (ऋतस्य) अवश्यम्भावी कर्म-फल अथवा सत्य के (दीदिवम्) अतिशय प्रकाशक तथा (स्वे दमे) अपने गृह अर्थात् यज्ञशाला में (वर्धमानम्) बढ़ते रहने वाले (अग्निदेव के निकट हम आ रहे हैं)।
7. (अग्ने) हे अग्निदेव । (सः) पूर्वोक्त गुणों से युक्त वही तुम (नः) हमारे लिए (सूपायनः) उसी प्रकार सुगम (भव) बन जाओ, (पिता इव सूनवे) जिस प्रकार कोई पिता अपने पुत्र के लिए होता है। (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण या रक्षा के लिए (सचस्व) समवेत हो जाओ।
भावार्थ - अग्नि से सदा समीप रहने की प्रार्थना की गयी है। पिता का दृष्टान्त देकर अग्नि की सुलभता दिखाई गयी है।

विष्णुसूक्तम् (1. 22.17-21)

[विष्णु विश्व के कण-कण में व्याप्त होने वाला देवता है। विष्णु ने अपने तीन चरणों में तीनों लोकों को नापा अथवा उनका निर्माण किया। विष्णु देवता के विचित्र कार्यों को देखकर मनुष्य धर्म एवं व्रत आदि के महत्त्व को जान जाता है। विष्णु के लोक (स्वर्गलोक) में आनन्द एवं प्रकाश का भण्डार है। विष्णु के आनन्दमय लोक को वे ही प्राप्त कर सकते हैं जो विद्वान् हैं, मेधावी हैं और भगवान् की स्तुति करते हैं। यहाँ विष्णु सर्वव्यापक भगवान् का वाचक हैं । इस सूक्त में गायत्री छन्द का प्रयोग किया गया है।]

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।

समूळहमस्य पांसुरे ॥११॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाम्यः।

अतो धर्माणि धारयन् ॥2॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत् यतो व्रतानि पस्पशे।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥3॥

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

दिवीव चक्षुराततम् ॥4॥

तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।

विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥5॥

1. (विष्णुः) विष्णु देवता ने (इदम्) इस समस्त संसार के उद्देश्य से (विचक्रमे) विशेष रूप से भ्रमण किया, पराक्रम दिखाया तथा (त्रेधा) तीन प्रकार से (पदम् निदधे) अपने चरण का विन्यास किया। (अस्य) इस विष्णु के (पांसुरे) धूलियुक्त पाद - विन्यास के स्थान में ही (समूळहम्) सम्पूर्ण संसार अन्तर्भूत हो जाता है।
2. (गोपाः) समस्त जगत् के रक्षक, (अदाम्यः) सर्वथा अहिंसनीय, अपराजेय, (धर्माणि धारयन्) अग्निहोत्र आदि धर्मों को पुष्ट करने वाले (विष्णुः) विष्णु देवता ने (त्रीणि पदा) अपने तीन चरणों को (विचक्रमे) विशेष रूप से फैलाया।
भावार्थ—विष्णु ने पृथ्वी आदि तीनों लोकों में अपने चरणों को प्रसारित किया।
3. हे ऋत्विजो (विष्णोः) विष्णुदेवता के (कर्माणि) आश्चर्य-जनक कर्मों को (पश्यत) देखो, (यतः) जिन कर्मों से (व्रतानि) अग्निहोत्र आदि कर्मों को, यजमान (पस्पशे) देखता है। विष्णु देव (इन्द्रस्य) इन्द्र देवता का (युज्यः) योग्य अर्थात् अनुकूल (सखा) मित्र है।
4. (विष्णोः) विष्णु देवता के (तत् परमं पदम्) उस सर्वोच्च स्थान को अर्थात् स्वर्ग को (सूरयः) विद्वान् लोग (सदा) सर्वदा (पश्यन्ति)

शास्त्र की दृष्टि से उसी प्रकार देखते हैं, (दिवि आततम् चक्षुः इव) जिस प्रकार आकाश में सर्वतः फैली हुई आँख (सभी चीजों को देख लेती है)।

5. (विष्णोः) विष्णु देवता का (यत् परमं पदम्) जो सर्वोच्च स्थान अर्थात् स्वर्ग है, (तत्) उस स्थान को (विपन्यवः) विशेष रूप से स्तुति करने वाले (जागृवांसः) शब्द और अर्थ के विषय में जागरुक (विप्रासः) मेधावी लोग (समिन्धते) सम्यक् प्रदीप्त करते हैं, उसे संसार के समक्ष प्रकाशित करते हैं।

सवितृसूक्तम् (1.35.2-4,9-10)

[ऋग्वेद में सविता प्रेरणा, स्फूर्ति तथा बुद्धि का देवता है। सूर्य के उदय के पूर्व ही वह लोगों को अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त कर देता है। सविता और सूर्य को प्रायः अभिन्न रूप में लिया गया है तथापि कहीं-कहीं दोनों में भेद है। विश्व को गति प्रदान करने वाले सूर्य का प्रतिनिधि सविता ही है। सविता सभी विघ्नों को दूर करके बुद्धि प्रदान करता है। प्रस्तुत मन्त्रों में त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग है।]

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥1॥

याति देवः प्रवता यात्युद्धता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम्।

आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥2॥

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशाम्यं यजतो बृहन्तम्।

आस्थाद् रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥3॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।

अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा धामृणोति ॥4॥

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाड्।

अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥5॥

1. (कृष्णेन रजसा) कृष्ण वर्ष के लोक अर्थात् अन्तरिक्ष से (आवर्तमानः) पुनः पुनः आते हुए, तथा (अमृतम्) देवताओं (मर्त्यम् च) एवं मनुष्यों को (निवेशयन्) अपने-अपने स्थान पर स्थापित करते हुए (भुवनानि) समस्त भुवनों को (पश्यन्) देखते हुए (सविता देवः) सविता देवता (हिरण्ययेन) स्वर्ण से बने हुए (रथेन) रथ के द्वारा, अर्थात् उस पर चढ़कर (आयाति) आता है।
2. (देवः) देदीप्यमान सविता (प्रवता) प्रवण अर्थात् नीचे की ओर जाने वाले मार्ग से (याति) जाता है। पुनः वह (उद्वता) ऊर्ध्व गामी मार्ग से (याति) जाता है। वह देवता (यजतः) पूजनीय है, (शुभ्राभ्यास) शोभायुक्त या श्वेत वर्ण के (हरिभ्याम्) दो घोड़ों के द्वारा (याति) जाता है। (विश्वा दुरिता) समस्त कष्टों को (अपबाधमानः) नष्ट करते हुए (सविता देवः) सविता देवता (परावतः) बहुत दूर से (आयाति) आता है।
3. (अभीवृतम्) सर्वतः व्याप्त, (कृशनैः) स्वर्ण के द्वारा (विश्वरूपम्) अनेक रूपों को धारण करने वाले, (हिरण्यशाम्यं) स्वर्णनिर्मित शंकु वाले तथा (बृहन्तम्) प्रौढ़ (रथम्) रथ पर (यजतः) पूजनीय तथा (चित्रभानुः) विविध रंगों की किरणों से युक्त (सविता) सविता देवता (कृष्णा रजांसि) कृष्ण वर्ण के अन्धकार युक्त लोकों को प्रकाशित करने के उद्देश्य से (तविषीम्) प्रकाश रूप शक्ति को (दधानः) धारण करते हुए (आस्थात्) आरूढ़ हो चुका है।
4. (हिरण्यपाणिः) स्वर्णमय हाथों वाला तथा (विचर्षणि) सबों को विविध रूप से देखने वाला (सविता) सविता देवता (धावापृथिवी) स्वर्ग और पृथ्वी (उभे) इन दोनों के (अन्तः) बीच से (ईयते) जाता है। यह देवता (अभीवाम्) रोग आदि बाधाओं को (अपबाध ते) दूर करता है, (सूर्य वेति) सूर्य की ओर जाता है तथा (कृष्णेन रजसा) अन्धकार को दूर करने वाले तेज से (द्याम्) आकाश को

(ऋणोति) व्याप्त कर लेता है।

5. (हिरण्यहस्तः) स्वर्णमय हाथों वाला (असुरः) प्राणदाता (सुनीथः) अच्छा मार्गदर्शक (सुमृधीकः) पर्याप्त सुख देने वाला तथा (स्ववान्) धनवान्, धन देने वाला सविता (अर्वाङ्) हमारी ओर (यातु) आये। (रक्षसः) राक्षसों को तथा (यातुधानान्) असुरों को (अपसेधन्) निराकृत करते हुए (प्रतिदोषम्) प्रत्येक रात्रि में (गृणानः) स्तुति किये जाने पर (देवः) सविता देवता (अस्थात्) उपस्थित होता है।

* असुरः - असु(प्राण) + रा (दान करना) + क - प्रत्यय = प्राण देने वाला। तुलनीय - अवेस्ता - अहुर (देवता) । संस्कृत में यह 'राक्षस' अर्थ में रूढ़ हो गया है।

इन्द्रसूक्तम् (II. 12.1-2, 7, 9, 13)

[ऋग्वेद में प्रायः 250 सूक्त इन्द्र से सम्बद्ध हैं। वैदिक युग के सर्वाधिक लोकप्रिय तथा शक्तिसम्पन्न देवता के रूप में इन्द्र का महत्त्व है। शत्रुओं के संहार के कार्य में इन्द्र से बार-बार सहायता की प्रार्थना की गयी है। इन्द्र के वीरकर्मों में पृथ्वी का स्थिरीकरण, भक्तों को युद्ध में विजय दिलाना, समस्त जगत् को अनुशासित रखना इत्यादि हैं। इन्द्र शक्ति का प्रतीक है - शारीरिक दृढ़ता इसका मुख्य लक्षण है। संसार में वृष्टि करके इन्द्र अपने परमेश्वर्य का परिचय देता है। इस प्रकार इन्द्र एक राष्ट्रीय देवता है। इस सूक्त में त्रिष्टुप् छन्द है।]

1. इस मन्त्र में कुछ विद्वानों ने 'कस्मै' में किम्-सर्वनाम की चतुर्थी-विभक्ति मानकर - उसका अर्थ 'किसके लिए' किया है। किन्तु 'क' प्रजापति का एक नाम भी है जो परमात्मा की आनन्दमयता का प्रतीक है।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत्।
 यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥11॥
 यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकृपितौ अरम्णात्।
 यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तम्नात्स जनास इन्द्रः ॥12॥
 यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
 यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥13॥
 यस्मान् ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
 यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥14॥
 द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
 यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥15॥

1. (यः) जो (मनस्वान् देवः) मनस्वी देवता (जातः एवं प्रथमः) उत्पन्न होते ही सर्वश्रेष्ठ बन गया था, उसने (देवान्) अन्य देवताओं को (क्रतुना) अपने बलशाली कर्मों से (पर्यभूषत) अभिभूत कर लिया, (यस्य) जिसके (शुष्मात्) बल से (रोदसी) धावा - पृथ्वी (अभ्यसेताम्) भयभीत हो जाते हैं, (नृम्णस्य) पौरुष के (मह्ना) महत्त्व के कारण जो प्रसिद्ध हैं, (जनासः) हे मनुष्यों ! (स इन्द्रः) वही इन्द्र है।
2. (यः) जिसने (व्यथमानाम् पृथिवीम्) चंचल पृथ्वी को (अदृंहद्) दृढ़ किया, (यः) जिसने (प्रकृपितान् पर्वतान्) इधर-उधर चलने वाले पर्वतों को (अरम्णात्) अपने स्थान पर व्यवस्थित किया, (यः) जिसने (वरीयः) अत्यन्त विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (विममे) निर्मित किया, फैलाया, और (यः) जिसने (द्याम्) स्वर्ग को भी (अस्तम्नात्) स्थिर किया, (जनासः) हे मनुष्यों ! (स इन्द्रः) वही इन्द्र है।
3. (यस्य प्रदिशि) जिस देवता के अनुशासन में (अश्वासः) सभी अश्व हैं, (यस्य गावः) जिसके अनुशासन में सभी गायें हैं,

- (यस्य ग्रामाः) जिसके अनुशासन में सभी ग्राम हैं, (यस्य विश्वे रथासः) जिसके अनुशासन में सभी रथ हैं, (यः सूर्यम्) जिसने सूर्य को (य उषसम्) और जिसने उषा को (जजान) उत्पन्न किया, और (यः अपां नेता) जो संसार में जल को लाने वाला अर्थात् प्रेरक है, (जनासः) हे मनुष्यों ! (सइन्द्रः) वही इन्द्र है।
4. (यस्मात् ऋते) जिस देवता के बिना (जनासः) युद्ध करने वाले मनुष्य (न विजयन्ते) विजय नहीं पाते, (युध्यमानाः) युद्ध करते हुए वीर लोग (यम्) जिस देवता को (अवसे) रक्षा के लिए (हवन्ते) बुलाते हैं, (यः) जो (अच्युतच्युत्) न हिलने वाले पर्वतादि को भी कँपा देता है, (जनासः) हे मनुष्यों ! (सइन्द्रः) वही इन्द्र है।
5. (अस्मै) इस देवता के सामने (पृथ्वी द्यावाचित्) पृथ्वी- और स्वर्ग तक (नमेते) झुक जाते हैं, (अस्य) इस देवता के (शुष्माव) बल से (पर्वताः भयन्ते) पर्वत भी डर जाते हैं। (यः) जो (सोमपा निचितः) सोमपायी के रूप में जगत् - प्रसिद्ध है, (यः बज्र बाहुः) जो वज्र के समान दृढ़ भुजाओं वाला है, (यः वज्रहस्तः) और जिसके हाथ में वज्र है, (जनासः) हे मनुष्यों ! (सइन्द्रः) वही इन्द्र है।

5. उषःसूक्तम् (III. 61.1, 2, 4)

[उषा प्रभात की देवी है। वह ऋग्वेद में प्रायः 20 सूक्तों में वर्णित है। पूर्वदिशा में सूर्योदय के पूर्व के सौन्दर्य का प्रतिनिधित्व करने वाली उषा की स्तुतियों में काव्योचित कल्पना चरम सीमा पर है। वह आर्यों के प्रकृति - प्रेम का प्रतीक है। उसे आलंकारिक रूप में स्वर्ग की दुहिता, सूर्य की प्रेमिका तथा रात्रि की स्वसा भी कहा गया है। प्राचीन होने पर भी वह प्रतिदिन नये रूप में उदित होने के कारण युवती भी है। उदित

होते ही उषा पूरे क्षितिज को आलोकित कर देती है। प्रस्तुत मन्त्रों में त्रिष्टुप् छन्द है।]

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।

पुराणी देवि युवतिः पुरन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥1॥

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये ॥2॥

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसवरस्य पत्नी ।

स्वर र्जनन्ती सुभगा सुदसा आन्ताद्विवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥3॥

1. (वाजिनि) अन्न से युक्त तथा (मघोनि) धन से युक्त (उषः) हे उषा देवि ! (प्रचेताः) प्रकृष्ट ज्ञान से युक्त होकर (गृणतः) स्तुति करने वाले व्यक्ति की (स्तोमं) स्तुति को (वाजेन) अन्न के साथ, हव्य के साथ (जुषस्व) स्वीकार करो। (विश्ववारे) सबों के द्वारा वरण करने योग्य (देवि) हे उषादेवि ! तुम (पुराणी) प्राचीनतम् होने पर भी (युवतिः) युवती के समान सुन्दरी हो, (पुरन्धिः) प्रचुर बुद्धि से युक्त हो तथा (व्रतम्) अपने निर्धारित नियम पर (अनुचरसि) चलती रहती हो।
2. (उषःदेवि) हे उषा देवि ! तुम (अमर्त्या) अमर हो (चन्द्ररथा) चमकीले रथ से युक्त हो, तथा (सूनृता) प्रिय तथा सत्य वाणी का (ईरयन्ती) उच्चारण करती हुई (विभाहि) विशेष रूप से शोभा प्राप्त करो। (त्वा हिरण्यवर्णाम्) स्वर्ण के समान चमकीले वर्णवाली तुम्हें (सुयमासः अश्वा) अच्छी तरह नियन्त्रित किये जा सकने वाले घोड़े (आवहन्तु) में आये, (ये पृथुपाजसः) जो घोड़े पर्याप्त बल वाले हैं।
3. (स्यूम इव) वस्त्र के समान विस्तृत अन्धकार को (अवचन्वती) फेंकती हुई (स्वसरस्य) सूर्य की (पत्नी) पत्नी (मघोनी) धनवती

(उषा: याति) उषा देवी जाती हैं। (स्व:) अपने तेज को (जनन्ती) उत्पन्न करती हुई (सुभगा) सौभाग्य युक्त (सुदंसा) सुन्दर कर्म करने वाली यह उषा (दिव:) आकाश के (आ अन्तात्) अन्तिम छोर तक तथा (आ पृथिव्या:) पृथ्वी के अन्तिम छोर तक (पप्रथे) फैल जाती हैं।

6. मण्डूकसूक्तम् (VII. 103 , 3 , 6 , 7)

[ऋग्वेद में देवताओं के रूप में कतिपय जीव जन्तुओं का भी आह्वान किया गया है। इनमें मण्डूक (मेंढक) भी हैं। मण्डूकों से संबद्ध इस सूक्त का उद्देश्य कुछ लोग वर्षा लाना मानते हैं, तो कुछ लोग वेदपाठ का उपहास करना बतलाते हैं। मण्डूक को वेदपाठी ब्रह्मचारी का प्रतीक भी कहा जा सकता है। इस सूक्त की विशेषता वर्षा के आरम्भ में यज्ञादि कार्यों को पुनः आरम्भ करने वाले पुरोहितों तथा मण्डूकों में सादृश्य-दिखाना है। अतः एक और यह सूक्त पुरोहितों को कर्तव्य का स्मरण कराता है तो दूसरी और प्रकृतिवादी काव्य भी है। इसमें त्रिष्टुप् छन्द का प्रयोग है।]

यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम्।
 अख्वलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥1॥
 गोमायुरेको अजयायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम्।
 समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः॥2॥
 ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।
 संवत्सरस्य तदहः परि ष्ट यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव॥3॥

1. (प्रावृषि) वर्षाकाल के (आगतायाम्) आ जाने पर (यतः ईम्) जब (तृष्यावतः) प्यास के व्याकुल (उशतः) जल की कामना करने वाले (एनाम्) इन मण्डूकों पर (अभ्यवर्षीत्) मेघ जल बरसाता है, तब (अन्यः) एक मण्डूक (अन्यम्) दूसरे (वदन्तम्)

बोलते हुए - मण्डूक के पास (अख् खलीकृत्य) लपककर उसी प्रकार (उपएति) जाता है, जिस प्रकार (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिता के पास लपक कर जाता है।

2. (एषाम्) इन मण्डूकों में (एकः गोमायुः) कोई तो गाय के समान ध्वनि करता है, (एकः अजमायु) कोई बकरे के समान ध्वनि करता है, (एक पृश्निरः) कोई पृथ्वी के रंग का है, (एकःभ्रहरितः) तो कोई हरे रंग का है। (समानं नाम) एक ही मण्डूक नाम को (बिम्तः) धारण करते हुए भी (विरुपाः) ये विविध रूपों वाले हैं, (पुरुत्रा) सर्वत्र (वाचं बदन्तः) अपनी "टर्-टर्" ध्वनि को उत्पन्न करते हुए (पिपिशुः) आविर्भूत होते हैं।
3. (मण्डूकाः) हे मण्डूकों ! तुम (अतिरात्रे सोमे) अतिरात्र-नामक सोमयाम में (ब्राह्मणासः न) ब्राह्मणों के समान (पूर्ण सरः) जल से भरे सरोवर के (अभितः) चारों ओर (वदन्तः) बोलते हुए, अथवा मन्त्र-पाठ करते हुए (संवत्सरस्य) वर्ष के (तत् अहः) उस दिन में (परिष्ठः)

7. हिरण्यगर्भसूक्तम् (X.121,1-4,10)

[प्रस्तुत सूक्त में प्रजापति परमेश्वर की प्रार्थना है। परमेश्वर समस्त संसार का स्वामी है। उसी ने सभी पदार्थों का निर्माण किया है। उसके अनुशासन में सभी रहते हैं - वे चर हों या अचर, मरणधर्मा प्राणी हों या अमर देवगण। पर्वत, समुद्र, पृथ्वी तथा सभी दिशाएँ उसी की कृपा से अवस्थित हैं। इस सूक्त के माध्यम से वैदिक ऋषि ने ईश्वर की अपरिमित शक्ति का वर्णन करते हुए अपनी श्रद्धा प्रकाशित की है। इसमें त्रिष्टुप् छन्द है।]

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
 स दाधार पृथिवीं धामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥1॥
 य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
 यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥2॥
 यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद् राजा जगतो बभूव।
 य ईशो अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥3॥
 यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसयो सहाहुः
 यस्येमाः प्रदिशो यस्यबाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥4॥
 प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
 यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥5॥

1. (अग्रे) सृष्टि के प्रारम्भ में (हिरण्यगर्भः) प्रजापति अर्थात् परमेश्वर ही (समवर्तत) विद्यमान था, जो (जातः) प्रकट होते ही (भूतस्य) सभी उत्पन्न पदार्थों एवं प्राणियों का (एकः पतिः) एकमात्र स्वामी (आसीत्) हो गया। (सः) वह परमेश्वर ही (इमाम् पृथिवीम्) इस पृथ्वी को (उत द्याम्) और स्वर्गलोक को भी (दाधार) धारण करता है। (कस्मै देवाय) उस “क” नामक प्रजापति अर्थात् आनन्दस्वरूप परमात्मा के लिए हम (हविषा) हवि अर्थात् यज्ञ में आहुति द्वारा (विधेम) पूजाविधि सम्पन्न करें।
2. (यः) जो परमेश्वर (आत्मदाः) आत्माओं को उत्पन्न करता है, उन्हें शरीर प्रदान करता है, (बलदाः) जो शक्तिदाता है, (यस्य) जिसके (प्रशिष्यम्) अनुशासन को (विश्वेदेवाः) सभी देवता (उपासते) स्वीकार करते हैं, (अमृतं मृत्युः) अमरता और मृत्यु से दोनों (यस्य छाया) जिसकी छाया के रूप में अवस्थिति हैं। (कस्मै देवाय) उस प्रजापति देवता के लिए हम (हविषा विधेम) आहुति द्वारा पूजाविधि सम्पन्न करें।

3. (यः) जो परमेश्वर (महित्वा) अपनी महिमा से (प्राणतः) साँस लेने वाले तथा (निमिषतः) आँख झपकाने वाले अर्थात् सभी प्रकार के प्राणियों से युक्त (जगतः) जगत् का (एक इत्) एकमात्र (राजा बभूव) राजा बना है, (यः) जो परमेश्वर (अस्य) इस संसार के (द्विपदः) दो पैर वालों तथा (चतुष्पदः) चार पैर वालों पर (ईशे) शासन करता है, उस प्रजापति देवता के लिए हम आहुति द्वारा पूजा-विधि सम्पन्न करें।
4. (यस्य) जिस परमेश्वर को (महित्वा) महिमा से (इमे हिमवन्तः) ये बर्फीले पर्वत हैं, (रसया सह) पृथ्वी के साथ (समुद्रम्) समुद्र को ऋषिगण (यस्य) जिसकी महिमा के रूप में (आहुः) बनाते हैं। (यस्य) जिसकी महिमा से (इमाः प्रदिशः) ये दिशाएँ - उपदिशाएँ (यस्य बाहू) जिसकी भुजाओं के रूप में हैं, उस प्रजापति देवता के लिए हम आहुति द्वारा पूजा विधि सम्पन्न करें।
5. (प्रजापते) हे प्रजापति परमेश्वर । (एतानि विश्वानि) इन समस्त वर्तमान पदार्थों के तथा (ता जातानि) उन अतीतकाल में उत्पन्न पदार्थों के (परि) ऊपर (त्वम् अन्यः) तुमसे भिन्न कोई भी (न बभूव) नहीं हुआ- केवल तुम्हीं सबों के ऊपर शासक के रूप में अवस्थित हो। हम लोग (यत्कामाः) जिस किसी कामना से युक्त होकर, आपको (जुहुमः) आहुति प्रदान करें, (तत् नः अस्तु) हमारी वह कामना पूरी हो तथा (वयं) हम लोग (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) बन जायें।

8. संवनन संघटन/सूक्तम् (X. 191)

[ऋग्वेद-संहिता का यह अन्तिम सूक्त है। इसके ऋषि संवनन आंगिरस हैं। इस सूक्त में परस्पर सहयोग की भावना बहुत अच्छी तरह प्रकाशित हुई है। संकल्प, विचार तथा कार्यकलाप में सर्वत्र समानता की प्रार्थना

यहाँ की गयी है। पारस्परिक विरोधों को छोड़कर एकरूपता तथा समन्वय रखते हुए सभी लोग साथ-साथ चलें- यही इस सूक्त की मूल भावना है। इसके तृतीय मन्त्र में त्रिष्टुप् तथा अन्य मन्त्रों में अनुष्टुप् छन्द है।]

संसमिद् युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।

इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥1॥

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥2॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी

समानं मनः सह चित्तमेषाम्।

समानं मन्त्रभूमि मन्त्रये वः

समानेन वो हविषा जुहोमि॥3॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥4॥

1. (वृषन् अग्ने) कामनाओं की पूर्ति करने वाले हे अग्निदेव ! (अर्यः) समस्त जगत् के स्वामी के रूप में तुम (विश्वानि इत्) सभी पदार्थों को (सं सम् आयुवसे) निश्चित रूप से व्याप्त कर लेते हो । वैश्वार-रूप में सभी को समन्वित करते हो। तुम (इळः) पृथ्वी के (पदे) उपयुक्त स्थान पर (समिध्यसे) प्रज्वलित किये जाते हो, अतः (सनः) वही तुम हमारे लिए (वसूनि) धन-सम्पत्तियों को (आभर) ले आओ।
2. हे स्तुति करने वाले लोगों ! तुम लोग (सं गच्छध्वम्) साथ मिलकर चलो, (सं वदध्वम्) साथ मिलकर बोलो तथा (वः मनांसि) तुम्हारे मन (सं जानताम्) समान रूप से अर्थ - बोध करे। (यथा) जिस प्रकार (पूर्वे देवाः) पूर्वकाल के देवगण

इसका दूसरा अर्थ है - अहिंसित चक्रनेमि, पहिये की छड़ों वाला रथ।

(संजानानाः) समान रूप से अर्थबोध करते हुए अर्थात् सहमति प्राप्त करते हुए (भागम्) अपने हव्यभाग को (उपासते) स्वीकार करते हैं - उसी प्रकार तुम लोग भी विरोध छोड़कर सम्पन्नता प्राप्त करो।

3. (एषाम्) एक ही कर्म में लगे हुए इन ऋत्विजों में (मन्त्रः) स्तुति या मंत्रणा (समानः) समान हो, (समितिः) मन्त्रणा-स्थल अर्थात् सभा (समानी) समान-रूप हो, (समान मनः) इनका अन्तकरण समान हो तथा (चित्त सह) विचार भी साथ-साथ चले। हे देवगण ! मैं (वः) तुम्हारे लिए (समानं मन्त्रम्) एक ही प्रकार की स्तुति को (अभिमन्त्रये) प्रयुक्त कर रहा हूँ। पुनः मैं (वः) तुम्हारे लिए (समानेन हविषा) समान आहुति के द्वारा (जुहोमि) हवन कर रहा हूँ।
4. हे ऋत्विजों ! (वः) तुम्हारा (आकूतिः) संकल्प (समानी) समान-रूप का हो, (वः हृदयानि) तुम्हारे हृदय (समाना) समान रूप के हों तथा (वः मनः) तुम्हारा मन भी (समानम् अस्तु) समान हो, (यथा) जिससे (वः) तुम्हारी (सुसह) सुन्दर संगति (असति) बन जाये।

यजुर्वेद संहिता

1. प्रार्थना (i.1)

[यजुर्वेद - संहिता का माध्यन्दिन - शाखा का यह प्रथम मंत्र पूर्णतः गद्यरूप में है। इसका प्रयोग कर्मकाण्ड की दृष्टि से “दर्श-पूर्णमास” नामक यज्ञ में होता है। इस मन्त्र में यज्ञकर्ता के आरोग्य, पशुओं की रक्षा तथा दीर्घायुष्य की प्रार्थना है। इसमें यज्ञ के वातावरण की अभिव्यक्ति हुई है। पलाश की शाखा, गोवत्स, गौ (दुग्धादि) इत्यादि यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं।]

ॐ इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठेत्तमाय कर्मण
आप्यायध्वमहन्या इन्द्राय भागं प्रजावती-रनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत
माघशशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि॥

(अध्वर्यु पलाशवृक्ष की शाखा से कहता है कि) मैं (त्वा) तुम्हें (इषे) अन्न-प्राप्ति के लिए तथा (ऊर्जे) बल की प्राप्ति के लिए (काटता हूँ)। (अध्वर्यु पुनः बछड़ों से कहता है कि) तुम (वायवः) वायु के समान वेगशाली (स्थ) बनो। (वह गायों से कहता है कि) (सविता देवः) सविता देवता (वः) तुम सभी को (श्रेष्ठतमाय कर्मणे) सर्वश्रेष्ठ कार्य अर्थात् यज्ञकर्म के अनुष्ठान के लिए (प्रार्पयतु) उचित स्थान पर पहुँचा दे। (अन्हन्याः) अहिसंनीय या निर्विध्न, (प्रजावतीः) सन्तान-युक्त, (अनमीवाः) रोगादि-बाधाओं से रहित तथा (अयक्ष्माः) यक्ष्मा-हीन रहकर, तुम सब (इन्द्राय भागं) इन्द्र-देवता के लिए देने योग्य अंश को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ।

(वः) तुम सबों को (स्तेनः) चोर या (अधशंसः) पापकर्मा वन्य जन्तु या चाण्डाल (मा ईशत) अपने अधीन न कर पाये - चुरा न ले, मार न पाये।

(अस्मिन् गोपतौ) इस गोरक्षक यजमान के धर में (ध्रुवाः) स्थिर तथा (बहवीः) अधिक संख्या में (स्यात्) बनी रहे। (अध्वर्यु पुनः पलाश-दण्ड से कहता है कि) इस (यजमानस्य) यजमान के (पशून्) पशुओं को (पाहि) सुरक्षित रखो।

2 सरस्वती (xx. 84-6)

[वेदों में सरस्वती की स्तुति देवता के रूप में दो प्रकार से हुई है- वाणी की देवी के रूप में तथा नदी-विशेष के अर्थ में। वाग्देवी सरस्वती सत्य तथा प्रिय वाणी के लिए सबों को प्रेरित करती है। वह सबों को पवित्र भी करती है। इस दृष्टि से वह भावरूप देवता है। नदी के रूप में सरस्वती आर्यों के समस्त याज्ञिक कार्य-कलाप की अनुष्ठान-स्थली थी। उसके जल का प्रयोग अन्नोत्पादन में होता था, कभी-कभी उसमें भयानक बाढ़ भी आती थी। ये मंत्र गायत्री-छन्द में हैं तथा ऋग्वेद-संहिता (I. 2. 9-12)में ही हैं।]

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।

यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥1१॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।

यज्ञं दधे सरस्वती ॥2॥

महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना।

धियो विश्वा विराजति॥3॥

1. (पावका) सभी को पवित्र करने वाली, (वाजिनीवती) अन्न से भरी-पूरी, यज्ञ क्रियाओं को बढ़ाने वाली तथा (धियावसुः) बुद्धि-रूप सम्पत्ति वाली (सरस्वती) सरस्वती देवता (वाजेभिः)

ऋग्वेद - संहिता में पाठ है - सभूमिं विश्वतो वृत्वा। वह पृथ्वी को चारों ओर से घेर लेने के बाद भी।

हमें देने योग्य अन्नों के साथ (नः) हमारे (यज्ञं) यज्ञ में आने की (वष्टु) कामना करे।

2. (सूनृतानां) सत्य और प्रिय वाणियों को (चोदयित्री) प्रेरणा देती हुई तथा (सुमतीनां) सुन्दर बुद्धियों को (चेतन्ती) प्रकट करती हुई (सरस्वती) सरस्वती देवी (यज्ञं) हमारे इस यज्ञ को (दधे) धारण करती है, सम्पादित करती है। (बुद्धि को प्रेरित करने से यज्ञ का सुन्दर अनुष्ठान होता है।)
3. (सरस्वती) नदी-देवता सरस्वती (केतुना) अपने कर्म से (महः अर्णः) विशाल जलराशि को (प्रचेतयति) प्रकट करती है - वर्षा आने पर प्रचुर जल प्रकट होता है। वही सरस्वती वाणी रूप में (विश्वाः धियः) समस्त बुद्धियों को (विराजति) विविध रूप से प्रकाशित करती है।

3 राष्ट्रगीतम् (xxii 22)

[यजुर्वेद के इस गद्यात्मक मन्त्र में छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा राष्ट्रहित की कामना की गई है। इसका पाठ सभी कल्याण-कार्यों के अवसर पर किया जाता है। इसमें राष्ट्र की आवश्यकता के अनुरूप सभी व्यक्तियों, पशुओं तथा अन्य पदार्थों के उत्कर्ष की कामना है।]

आं ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी
महारथो जायतां दोग्धी धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू
रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

(ब्रह्मन्) हे परमेश्वर! (राष्ट्रे) हमारे इस राष्ट्र में (ब्राह्मणः) ज्ञानसम्पन्न मनुष्य (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्म-तेज ये युक्त (आजायताम्) बनें, (राजन्यः)

शासन से सम्बद्ध मनुष्य (शूरः) वीर, (इषव्यः) अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण, (अतिव्याधी) लक्ष्यवेध में कुशल तथा (महारथः) महारथी (आजायताम्) बने। यहाँ की (धेनुः) गाय (दोग्ध्री) प्रचुर दूध दे, (अनड्वान्) बैल (वोढा) भार-वहन में समर्थ अर्थात् दृढ़ हो, (सप्तः) घोड़ा (आशुः) तेज चले, (योषा) यहाँ की स्त्री (पुरन्धिः) पति-पुत्र से युक्त रहे, (युवा) हमारा युवक (जिष्णुः) विजय पानेवाला, (रथेष्ठाः) रथ पर बैठने वाला, योद्धा अर्थात् दृढ़ एवं (सभेयः) सभा में स्थान पाने योग्य या शिष्ट हो। (अस्य यजमानस्य) इस यज्ञकर्ता को (वीरः) वीर पुत्र (आ जायताम्) उत्पन्न हो। (निकामे निकामे) जब-जब हमारी उत्कट कामना हो तब-तब (नः) हमारे लिए (पर्जन्यो वर्षतु) मेघजल बरसाये। (नः) हमारे (ओषधयः) पेड़-पौधे (फलवत्यः) फलयुक्त होकर (पच्यन्ताम्) परिपक्व हो तथा (नः) हमारे यहाँ (योगक्षेमः) नयी वस्तुओं की प्राप्ति एवं पुरानी वस्तुओं की सुरक्षा (कल्पताम्) होती रहे।

4 स्वस्तिवाचनम् (xiv. 19, 21, 22, 36, . 3)

[स्वस्ति का अर्थ है कल्याण। सु+अस्ति = सुन्दर स्थिति। किसी के कल्याण के लिए अथवा यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए जो मन्त्रपाठ होता है, उसे स्वस्तिवाचन कहते हैं। प्रायः सभी शुभ कर्मों के आरम्भ में इन मन्त्रों का पाठ किया जाता है। ये मन्त्र ऋग्वेद तथा अन्य वेदों में भी आये हैं।]

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।।।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।2।।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।

पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः।।3।।

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।

पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥4॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।

यद्भद्रं तन्न आसुव॥5॥

1. (वृद्धश्रवाः) प्रभुत कीर्ति वाला (इन्द्रः) इन्द्र-देवता (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करे, (विश्ववेदाः) सर्वत्र (पूषा) पूषन् नामक देवता* (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करे। (अरिष्टनेमिः) अहिंसित पदो वाला (ताक्ष्यः) गरुड देवता (नः स्वस्ति) हमारा कल्याण करे, (बृहस्पति) बृहस्पति देवता भी (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे।
2. (यजत्राः) यज्ञकर्ता की रक्षा करने वाले (देवाः) हे देवगण! हम स्तुतिकर्ता लोग (कर्णेभिः) अपने कामों से (भद्रं) कल्याणकारी बातें (श्रृणुयाम) सुनें, (अक्षभिः) अपनी आँखों से (भद्रं पश्येम) कल्याण ही देखें (तुष्टुवांसः) देवताओं की स्तुति कर चुकने पर हम लोग (स्थिरैः अङ्गैः) अपने दृढ़ अंगों के द्वारा तथा (तनूभिः) पुत्र-पौत्रादि सन्ततियों के साथ (यत् देवहितम् आयुः) जो देवताओं के द्वारा दी गयी आयु है, उसे (व्यशेमहि) प्राप्त करें।
3. (देवाः) हे देवगण! (यत्र) जिस आयु में (नः) हमारे (तनूनां) शरीरों की (जरसं) वृद्धावस्था (चक्र) तुमने बनायी है, उस आयु तक अर्थात् (शतमित् नु शदरः) पूरे सौ वर्षों तक भी, तुम (अन्ति=अन्तिक) निकट ही रहो - वृद्धावस्था में भी दूर न रहो। (यत्र) जिस अवस्था में (पुत्रासः) हमारे पुत्र तक (पितरः भयन्ति) पिता बन जाते हैं - अर्थात् हमारे पौत्र हो जाते हैं उस अवस्था के (मध्या) बीच में ही (नः मन्तोः) हमारी गमनशील (आयुः) आयु को (मा रीरिषत) खण्डित न करो। भावार्थ हमें पूरी आयु का भोग मिले और देवगण सदा साथ रहें।

4. हे अग्निदेव! (पृथिव्यां) पृथ्वी में, (ओषधीषु) वनस्पतियों में, (दिषि) स्वर्ग में तथा (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष लोक में (पयः पयः) दिव्य रस-ही-रस (धाः) स्थापित कर दो। (मह्यम्) मेरे लिए (प्रदिशः) सभी दिशाएँ तथा उपदिशाएँ (पयस्वतीः सन्तु) दिव्यरस से भरी -पूरी बन जाएँ।
5. (देव सवितः) हे सविता देवता! हमारे निकट से (विश्वानि, दुरितानि) समस्त पापों या कष्टों को (परासुव) दूर भगा दो, (यद् भद्रम्) जो कल्याण हो, (तत् नः आसुव) वह हमें प्रदान करो।

5 पुरुषः (xxxi 1-3,7,16)

[वैदिक कर्मकाण्ड में पुरुष-सूक्त का बड़ा महत्त्व है। इसमें पुरुष-रूप परमात्मा से संसार की सृष्टि का प्रतीकात्मक वर्णन है। जगत् को व्याप्त करके भी परमात्मा का कुछ अंश शेष ही रहता है, उसने क्रमशः काल, जड़ तथा चेतन सभी पदार्थों का निर्माण किया है। सभी प्रकृतिक नियम भी उसी ने बनाये हैं। यद्यपि पुरुषसूक्त में 16 मंत्र हैं किन्तु यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण मंत्रों का ही संकलन किया गया है। यह सूक्त ऋग्वेद (x. 90) में भी है।]

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गलम्॥1॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥2॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाश्च पुरुषः।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥3॥

तस्माद् यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दाश्सि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥4॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥5॥

1. पुरुषः) परमात्मा (सहसशीर्षा) हजारों सिरवाला, (सहस्राक्षः) हजारों आँखों से युक्त और (सहस्रपात) हजारों पैर-वाला है अर्थात् संसार के जितने भी प्राणी हैं उनके सभी अंग परमात्मा के ही हैं। (सः) वह परमात्मा (भूमिम्) समस्त जगत् को (सर्वतः) चारों ओर से (स्पृत्वा) व्याप्त करने के बाद भी (दशाङ्गुलम्) दस अंगुल परिमाण में (अति अतिष्ठत्) अधिक होकर वर्तमान है।*
2. (इदं सर्वम्) यह समस्त संसार अर्थात् (यत्) जो (भूतम्) अतीत है (यच्च) और जो (भाव्यम्) भविष्यत् है (पुरुषः एव) वह सभी परमात्मा का ही स्वरूप है (उत) और वह परमात्मा (अमृतत्वस्य) मोक्ष का (ईशानः) स्वामी है तथा (यत्) जो (अन्नेन) अन्न से (अतिरोहति) उत्पन्न होता है, उसका भी स्वामी पुरुष ही है।
3. (अस्य) इस परमात्मा पुरुष की (एतावान्) इतनी पूर्वकथित (महिमा) विभूति तो है ही किन्तु (पुरुषः) परमात्मा तो (अतः) इस जगत् से (ज्यायान्) बहुत बड़ा है। (विश्वा) समस्त (भूतानि) प्राणि-समूह (अस्य पुरुषस्य) इस परमात्मा के (पादः) चतुर्थांश हैं। (अस्य) इस परमात्मा के (त्रिपाद्) अवशिष्ट तीन पाद तो (दिवि) स्वर्गलोक में (अमृतम्) विनाश-रहित के रूप में हैं।
4. (सर्वहुतः) सभी के द्वारा वन्दनीय (तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय परमात्मा से (ऋचः) ऋग्वेद, (सामानि) सामवेद तथा (छन्दांसि) गायत्री-प्रभृति छन्द (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए। (तस्मात्) उसी परमात्मा से (यजुः) यजुर्वेद भी (अजायत) उत्पन्न हुए। इन वेदों के बिना यज्ञ अर्थात् परमात्मा की अर्चना सम्पन्न नहीं होती

है।

5. (देवाः) ब्रह्मा के प्राणस्वरूप देवताओं ने (यज्ञेन) अर्थात् मानस-यज्ञ से (यज्ञं) पूजनीय परमात्मा का (अयजन्त) यजन-पूजन किया (तानि) वे ही (धर्माणि) संसार का पालन करने वाले धर्म या नियम (प्रथमानि) मुख्य (आसन्) थे। (ते) उन (महिमानः) महाभाग्य-शाली देवताओं ने (हे) पूर्वकाल में (नाकं) स्वर्गलोक को (सचन्त) सदा के लिए प्राप्त किया, (यत्र) जहाँ पर (पूर्वे साध्याः) पूर्व से ही रहने वाले साधकगण तथा (देवाः) देवगण (सन्ति) वर्तमान थे।

6 मेधा (xxxii14-16)

(प्रस्तुत मन्त्रों में मेधा अर्थात् बुद्धि की अपरिमित शक्ति का वर्णन करते हुए अग्नि आदि विविध देवताओं से बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना की गयी है।)

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।

तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥1॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।

मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥2॥

इदं में ब्रह्म च क्षत्रं चोमे श्रियमश्नुताम्।

मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा॥3॥

1. (अग्ने) हे अग्निदेव (यां) जिस (मेधां) बुद्धि की (देवगणाः) देवता लोग (पितरश्च) और पितृगण (उपासते) उपासना करते हैं (मेधया) उस बुद्धि से (अध) आज (माँ) मुझे (मेधाविनं)

धारणा-शक्ति सम्पन्न (कुरु) करो, (स्वाहा) यह आहुति स्वीकार करो।

2. (वरुण) जल का देवता वरुण (मे) मुझे (मेधां) बुद्धि (ददातु) प्रदान करें, (अग्निः, प्रजापतिः, इन्द्रः (वायुः) वायु और (धाता) ब्रह्मा मुझे (मेधां) धारण करनेवाली बुद्धि दें। उन देवताओं को (स्वाहा) यह आहुति स्वीकृत हो।
3. (इदं) यह ब्रह्म ज्ञान (च) और (क्षत्रं) दुःख से रक्षा करने वाला तेज (उभे) ये दोनों (मे) मेरी (श्रिय) शोभा को (अश्नुताम्) बढ़ाये। (देवाः) देवता लोग (मयि) मुझमें (उत्तमाम्) सर्वश्रेष्ठ (श्रियं) ऐश्वर्य को (दधतु) स्थापित करें। (तस्यै ते स्वाहा) इस प्रकार की लक्ष्मी को यह हवि स्वीकृत हो।

7 शिवसंकल्पः (xxxiv 1-6)

[इन मन्त्रों में मन तथा उसके कार्यों का वर्णन किया गया है। सभी मंत्रों के अन्त में मन के कल्याणकारी बनने की प्रार्थना है। मन में उठनेवाले संकल्प या इच्छाएँ सदा शिव (परोपकार तथा सौमनस्य) की ओर उन्मुख हों - यही इस सूक्त की मुख्य विषय-वस्तु है। पापवृत्ति से हटने और धर्म-वृत्ति में लगने का उपदेश इसमें निहित है।]

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्रस्य तथैवैति।

दूरगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥1॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥2॥

यत्प्रज्ञानमुम चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।

यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥3॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञ स्तायते सप्रहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥4॥
 यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्नप्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
 यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥5॥
 सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽमीशुभिर्वाजिन इव।
 हत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥6॥

1. (यत्) जो मन (जाग्रतः) पुरुष के जगे रहने पर, चक्षु आदि इन्द्रियों की अपेक्षा (दूरम् उदैति) बहुत दूर-दूर तक आता है, पुनः (तद्उ) वही देव विज्ञान - रूप मन (सुप्तस्य) पुरुष के सोये रहने पर (तथैव) उसी प्रकार (एति) दूर जाता है। जो (ज्योतिषाम्) विषयों का प्रकाशन करने वाली इन्द्रियों में (दूरंगमम्) सर्वाधिक दूर तक पहुँचने वाली (एक ज्योतिः) एकमात्र प्रकाशक इन्द्रिय है, (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी विचार करने वाला (अस्तु) बने।
2. (येन) जिस मन की सहायता से (अपसः) कर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मेधावी लोग (यज्ञे) यज्ञ में तथा (धीराः) बुद्धिमान् विचारक लोग (विदथेषु) यज्ञों की विधियों की योजना बनाने में (कर्माणि) नाना प्रकार के कार्य (कृण्वन्ति) करते हैं, (यज्ञ) जो मन (प्रजानाम्) प्राणियों के शरीर के (अन्तः) भीतर है, (अपूर्व) सर्वोपरि है तथा (यक्षम्) पूजनीय है- वह मेरा मन कल्याणकारी विचार करने वाला बने।
3. (यत्) जो मन (प्रज्ञानम्) विशेष प्रकार का ज्ञान देने वाला (चेतः) सामान्य ज्ञान देने वाला (उत) और (धृतिः च) धैर्य का उत्पादक है, पुनः (यत्) जो (प्रजासु) प्राणियों में (अन्तःज्योतिः) आन्तरिक प्रकाश तथा (अमृतम्) अमर आत्मा का प्रतिनिधि है, (यस्मात् ऋते) जिसके बिना (किंचन कर्म न क्रियते) कोई भी काम किया नहीं जा सकता।

4. (येन) जिस (अमृतेन) अमर आत्मा के प्रतिनिधि मन के द्वारा (इदं सर्वम्) यह सारा संसार अर्थात् (भूतं) अतीत, (भुवनं) वर्तमान तथा (भविष्यत्) भविष्यत् काल से सभी पदार्थ (परिगृहीतम्) पूर्णतः व्याप्त होते हैं, (येन) जिस मन के द्वारा (सप्तहोता यज्ञः) सात होताओं से अनुष्ठित होने वाला अग्निष्टोम नामक यज्ञ (तायते) फैलाया जाता है अनुष्ठित होता है - वह मेरा मन कल्याणकारी विचार करने वाला बने।
5. (रथनाभौ) रथ के पहिये के केन्द्र में (अराः इव) छड़ों के समान (यस्मिन्) जिस मन में (ऋचः) ऋचाएँ, (साम) साम-मन्त्र तथा (यजूषि) यजुर्वेद के मन्त्र (प्रतिष्ठिताः) प्रतिष्ठित हैं और (यस्मिन्) जिस मन पर (प्रजानां) प्रणियों का (सर्वं चित्तम्) समस्त ज्ञान (ओतम्) आश्रित है - वह मेरा मन कल्याणकारी विचार करने वाला बने।
6. (यत्) जो मन (अश्वान् सुषारथिः इव) घोड़ों को चलाने वाले अच्छे सारथि के समान (मनुष्यान्) मनुष्यों को (नेनीयते) इधर-उधर ले जाता है, (अभीशुभिः) लगामों के द्वारा (वाजिनः इव) वेगवान् घोड़ों के समान (मन सभी को नियन्त्रित करता है), (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में प्रतिष्ठित, (अजिरं) जरारहित, चिरनवीन तथा (जविष्ठम्) सर्वाधिक वेगवान् है - वह मेरा मन कल्याणकारी विचार करने वाला बने।

1. अन्य इन्द्रियाँ बाहर होती हैं, मन भीतर रहता है।
2. इस प्रकार मन में सामान्य तथा विशेष दोनों प्रकार के ज्ञान रहते हैं।

8 शान्तिपाठः (xxxvi 3-5, 9-10, 22-24)

[यजुर्वेद-संहिता के छत्तीसवें अध्याय से चुने हुए इन मन्त्रों में विविध

विषयों का वर्णन है। बुद्धि को प्रेरणा देने के लिए सविता से प्रार्थना प्रथम मन्त्र में की गयी है। इसे गायत्री - मंत्र भी कहते हैं क्योंकि गायत्री- छन्द में आये सभी मंत्रों में यह श्रेष्ठ है। अन्य मंत्रों में इन्द्र आदि देवताओं की प्रार्थना करते हुए उनसे आशीर्वाद माँगा गया है जिससे निर्भयता, कल्याण तथा आरोग्य का लाभ हो।]

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात्॥1॥

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा।

कया शचिष्ठया वृता॥2॥

कस्त्वा सत्यो मदानां मधं हिष्ठो मत्सदन्धसः।

दृढा चिदारुजे वसु ॥3॥

शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वयमा।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुक्रमः॥4॥

शं नो वातः पवताथं शं नस्तपतु सूर्यः।

शं नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु॥5॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।

शं योरभिस्रवन्तु नः ॥6॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।

शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥7॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्भित्रियास्वस्मै सन्तु

योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥8॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं

जीवेम शरदः शतथं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः

शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥9॥

1. पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा स्वर्गलोक (का स्मरण किया जाता है)*। (सवितुः देवस्य) सविता देवता के (तत् वरेण्यम्) उस बरण करने योग्य (भर्गः) तेज का (धीमहि) हम लोग ध्यान करते हैं (यः) जो सविता (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरित करता है।
2. (चित्रः) पूजनीय, (सदावृधः) सदा बढ़ते रहने वाला तथा (सखा) मित्र-रूप इन्द्र देवता (कया ऊती= ऊत्या) किस रक्षा-विधि के द्वारा (आ भुवत्) हमारे सामने आएगा वह (कया) किस (शचिष्ठया) अतिशय कर्मसम्पन्न (वृता) यज्ञ क्रिया के द्वारा (हमारा मित्र बनेगा)?
3. (हे इन्द्र देवता!) (मदानां) मद-प्रदान करने वाले पदार्थों के बीच (अन्धसः) सोमरूप अन्न का (कः) कौन-सा (महिष्ठः) सर्वाधिक मदजनक तथा (सत्यः) सत्य अंश (त्वा मत्सत्) तुम्हें प्रमत्त करता है (जिससे प्रमत्त होकर तुम) (दृढा वसु चित्) दृढ़ से दृढ़ धनों को भी (अपने भक्तों को दान करने के लिए) (आरुजे) चूर्ण-चूर्ण कर देते हो।
4. मित्र-देवता हमारा कल्याण करे, वरुण, अर्यमा (सूर्य) हमारे लिए कल्याणकर बनें, इसी प्रकार इन्द्र, बृहस्पति तथा (उरुक्रमः) विशाल डेग भरने वाला (विष्णुः) विष्णु देवता-ये सभी कल्याणकर हों।
5. (पवताम्) पवित्र करने वाले पदार्थों के बीच (बातः) वायु (नः) हमारे लिए (शम्) कल्याणकर अर्थात् आरोग्यदाता बने। (सूर्यः) सूर्य (नः) शं (तपतु) हमारे लिए कल्याणकर - रूप में तपे-हमें कष्ट न दे। (कनिक्रदद्) ये जोर-जोर से गरजने वाला (पर्जन्यः देवः) पर्जन्य देवता (नः शम् अभि वर्षतु) हमारे लिए सुखद रूप होकर बरसे।
6. (जल देवता की स्तुति की जाती है कि) (देवीः आपः) जल-देवता

(नः अभिष्टये) हमारे अभिषेक या इष्ट-सिद्धि के लिए तथा (पीतये) पान के लिए (शं भवन्तु) कल्याणकर हो - जल हमारे अभिष्ट कार्य की सिद्धि करे तथा पीने में सुखद हो (योः) रोगों के (शम्) शमनार्थ भी वह (नः) हमारी ओर (अभिस्रवन्तु) प्रवाहित हो।*

7. हे परमेश्वर! तुम (यतः यतः) जिस-जिस कष्ट या दुराचार से (हमें बचाने की) (समीह से) चेष्टा करते हो (ततः) उस-उस कष्ट से (नः अभयं कुरु) हमें अभय अर्थात् निर्भीक बना दो। (नः प्रजाभ्यः) हमारी प्रजाओं को (शं कुरु) सुख प्रदान करो तथा (नः) हमारे (पशुभ्यः अभयम्) पशुओं को निर्भीकता प्रदान करो।
8. (हे वरुण-देवता!) (नः) हमारे लिए (आपः ओषधयः) जल तथा पेड़-पौधे सभी (सुमित्रियाः सन्तु) अच्छे मित्र के रूप में हितकारक हो जाएँ किंतु (तस्मै) उस व्यक्ति के लिए (दुर्मित्रियाः सन्तु) शत्रु के रूप में हानिकारक बन जाएँ (यः अस्मान् द्वेषि) जो हमसे द्वेष रखता है (यं च वयं द्विष्मः) तथा जिससे हम घृणा करते हैं।
9. (देवहितं) देवताओं के द्वारा स्थापित, (परमेश्वर का) (तत् शुक्रं चक्षुः) वह चमकीला नेत्र अर्थात् सूर्य (पुरस्तात्) पूर्वदिशा में (उच्चरत्) उदित हुआ है। (उसकी कृपा से हम) (शरदः शतं पश्येम) सौ वर्षों तक देखने की शक्ति प्राप्त करें, (शरदः शतं जीवेम) सौ वर्षों तक जीवित रहें, (शरदः शतं श्रृणयाम) सौ वर्षों तक सुनने की शक्ति पायें (शरदः शतं प्रब्रवाम) सौ वर्षों तक हम साफ-साफ बोलें, (शरदः शतम् अदीनाः स्याम) सौ वर्षों तक दीनता-रहित हों - (यहीं नहीं), (शरदः शतात् भयः च) यह स्थिति सौ वर्षों से अधिक भी बनी रहे।

1. भूः (पृथ्वी), भुवः (अन्तरिक्ष) तथा (स्वः) स्वर्ग को “महाव्याहृति” कहते हैं। इनका उच्चारण करने के अनन्तर ही ब्रह्मा ने तीन लोकों की सृष्टि की थी। इसीलिए इनका उच्चारण कई मंत्रों के आरम्भ में किया जाता है।
2. संस्कृत भाषा में “आपः” जल स्त्रीलिंग तथा बहुवचन है।

सामवेद संहिता

1. आग्नेयगानम् (1, 3, 20, 27, 31)

[आग्नेयगान सामवेद-संहिता के प्रथम प्रपाठक के प्रथमार्ध से संकलित किया गया है। इस गान का देवता अग्नि तथा छन्द गायत्री है।]

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।

नि होता सत्सि बर्हिषि ॥1॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥2॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्।

परो यदिध्यते दिवि ॥3॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।

अया? रेता? सि जिन्वति ॥4॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥5॥

1. (अग्ने वीतये आ याहि) हे अग्निदेव! हविभक्षण के लिए आइये। (हव्यदातये गृणानः) हविप्रदान करने के लिए प्रस्तुत किये जाते हुए (होता) होता के रूप में (बर्हिषि नि सत्सि) आसन पर बैठिये।
2. हम (विश्ववेदसम्) सबको जानने वाले, (होतारम्) देवों का आह्वान करने वाले तथा (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्) उस यज्ञ को

सुन्दर ढंग से सम्पन्न करने वाले (अग्नि दूतं वृणीमहे) अग्नि को देवताओं के दूत के रूप में स्वीकार करते हैं।

3. (परो दिवि) द्युलोक में उत्कृष्ट रूप से (यत् इध्यते) जो प्रकाशित होता है, (आत्-इत्) उसी (प्रत्नस्य रेतसः) पुरातन शाक्ति से सम्पन्न (वासरं ज्योतिः पश्यन्ति) दिवस के प्रकाश अर्थात् अग्नि को सभी देखते हैं।
4. (अयम् अग्निः मूर्धा) यह अग्नि उच्चतम स्थान (दिवः ककुत्) द्युलोक का सर्वोच्च भाग तथा (पृथिव्याः पतिः) पृथ्वीपालक होने के कारण (अपां रेटांसि जिन्वति) अन्नरूप में परिणत जल-धाराओं की वृद्धि करता है।
5. (विश्वाय दशे) विश्व को प्रदर्शित करने के लिए (केतवः) किरणें (जातवेदम्) उत्पन्न होते ही प्रकाशित होने वाले (तं सूर्यं देवम्) उस प्रसिद्ध सूर्यदेव को (उद् उवहन्ति) भलीभाँति वहन करती हैं।

2. भद्रगानम् (111, 422, 627)

[भद्रगान सामवेद साहित्य के आग्नेयपर्व, ऐन्द्रपर्व तथा आरण्य पर्व से संकलित किया गया है। प्रथम मन्त्र के देवता अग्नि तथा छन्द उष्णिक् है। द्वितीय मन्त्र के देवता सोम तथा छन्द पंक्ति है। तृतीय मन्त्र के देवता अग्नि पवमान तथा छन्द गायत्री है।]

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।

भद्रा उते प्रशस्तयः॥११॥

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम्।

अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मद्

रणा गावो न यवसे विवक्षसे ॥२॥

अग्न आयूषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः।

आरे वाधस्व दुच्छुनाम् ॥३॥

1. (सुभग) हे रम्य ऐश्वर्य-सम्पन्न ! (आहुतः अग्निः नः भद्रः) हवन की गयी अग्नि हमारे लिए कल्याणकारी बने। (भद्रा रातिः) हमारा धन मंगलमय हो, (भद्रः अध्वरः) हमारा यज्ञ मंगलमय हो (उत प्रशस्तयः भद्राः) और हमारी स्तुतियाँ कल्याणकारिणी हों।
2. हे सोम! (नः मनो भद्रं वातय) हमारे मन को शुभसंकल्प में संलग्न करो, (उत दक्षम्) हमारी सर्वव्यापी आत्मा को शुभलक्षणों से युक्त करो (उत क्रतुं भद्रं प्रापय) और हमारे श्रेष्ठ ज्ञान को शुभ कर्म में लगाओ। (अथाते सख्ये रणा) इसके पश्चात् स्तोता आपकी मैत्री के लिए (गावो न यवसे) घास के प्रति गायों की अनुशक्ति के तुल्य तन्मय हो। (अन्धसः वः विमदे विवक्षसे) अतः अपने सोमरस की मादकता के कारण महान् होते हो।
3. (अग्ने) हे अग्नि ! (आयूषि पवसे) दीर्घ आयु प्रदान करो, (नः ऊर्जम् इषं च आसुव) हमें शक्ति और अन्न प्रदान करो। (दुच्छुनाम् आरे बाधस्व) तथा राक्षसों को हमसे दूर भगाओ।

अथर्ववेद संहिता

1. वाचस्पतिः (I.1.1)

[अथर्ववेद के आरम्भ में वाचस्पति का सूक्त है जिसमें वाणी के देवता की प्रार्थना है। इस सूक्त का प्रयोग “मेधा-जनन” के लिए संस्कार-रूप में होता है।]

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥

(ये) जो (त्रिषप्ताः) तीन सप्तकों के रूप में विद्यमान ध्वनियाँ (विश्वा रूपाणि) विविध रूपों को (बिभ्रतः) धारण करती हुई (परियन्ति) चारों ओर जाती हैं, (तेषां) उन ध्वनियों की (बला) शक्तियों को तथा

(तन्वः) शरीरों को अर्थात् बाह्यरूप को (अध) आज (वाचस्पतिः) वाणी का अधिष्ठाता देवता वाचस्पति (में दधातु) मुझ में स्थापित करे। वाचस्पति मुझे उच्चारण की शक्ति प्रदान करे।

2. सामंनस्यम् (III.30.1-3, 6-7)

[प्रस्तुत मन्त्र अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के तीसवें सूक्त से संकलित हैं। इनका महत्त्व ऋग्वेद के संवनन-सूक्त के समान ही हैं। यहाँ अथर्वा ऋषि समान भावना की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। कहीं भी विद्वेष का भाव न हो, सर्वत्र सौमनस्य हो, चित्त में उदारता रहे, पारिवारिक, सामाजिक तथा धार्मिक सहिष्णुता की भावना हो - ये सारी उदात्त कामनाएँ यहाँ अभिव्यक्त हुई हैं।]

सहृदयं सामंनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाहन्या ॥1॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संभनाः।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥2॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रयां ॥3॥

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।

सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥4॥

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येक श्नुष्टीन्संवनेन सर्वान्।

देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु ॥5॥

1. (अथर्वा ऋषि कहते हैं कि मैं) (वः) तुम लोगों के लिए (सहृदयं) हृदय की समानता, (सामंनस्यम्) मन की समानता तथा (अविद्वेषं) अहिंसनीय भावना (कृणोमि) उत्पन्न करता हूँ।

(अहन्या) अहिंसनीय गौ (जातं वत्सम् इव) जिस प्रकार सद्यः उत्पन्न बछड़े के प्रति (प्रेम की भावना रखती है उसी प्रकार) तुम लोग भी (अन्यः अन्यम् अभि) एक दूसरे के प्रति (हर्यत) प्रेम का भाव रखो।

2. (पुत्रः) पुत्र (पितुः अनुव्रतः) पिता का आज्ञापालक तथा (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) समान विचार रखने वाला (भवतु) बने। (जाया) पत्नी (पत्ये) पति के लिए (मधुमतीं) माधुर्यपूर्ण तथा (शान्तिवाम्) मित्रतापूर्ण, हितकर (वाचं) वाणी (वदतु) बोले।
3. (भ्राता) एक भाई (भातरं) दूसरे भाई के प्रति (उत) तथा (स्वसा) एक बहन (स्वसारं) दूसरी बहन के प्रति (मा द्विक्षत्) द्वेष-भाव न रखे। हे मानवों ! (सभ्यञ्जः) परस्पर मिलजुल कर रहते हुए तथा (सव्रताः) समान आचरण करते हुए (भद्रया) कल्याणकारी ढंग से (वाचं वदत) बातें बोलो।
4. हे मानवो! (वः) तुम लोगों का (प्रपा समानी) पीना साथ-साथ हो, (अन्नभागः) भोजन का ग्रहण भी (सह) साथ-साथ हो। मैं (वः) तुम लोगों को (समाने योक्त्रे) एक ही बन्धन में (सह युनज्मि) एक साथ जोड़ देता हूँ। तुम लोग (सम्यञ्जः) परस्पर मिलजुल कर रहते हुए (अग्निं) अग्नि देवता की (सपर्यत) पूजा करो (नाभिम् अभितः अराः इव) जिस प्रकार नाभि अर्थात् केन्द्र के चारों ओर पहिये की छड़ें रहती हैं।
5. हे मानवो! मैं (वः सर्वान्) तुम सभी लोगों को (संवननेन) समन्वय की शक्ति से (सध्रीचीनाम्) परस्पर संयुक्त, (संमनसः) समान विचार वाला तथा (एक श्नुष्टीन्) एक वर्ग में रहने वाला (कृणोमि) बनाता हूँ। (अमृतं रक्षमाणः) अमृत की रक्षा करने वाले (देवा इव) देवताओं के समान (सायं प्रातः) सन्ध्याकाल में तथा प्रातः काल में भी (वः) तुम लोगों के बीच (सामनसः) सौमनस्य अर्थात् मन की उदात्तता, स्वस्थता (अस्तु) बनी रहे।

सर्वात्मिका वाक् (IV.30)

[इस सूक्त का नाम “राष्ट्री देवी” सूक्त भी है। यह सूक्त कुछ परिवर्तनों के साथ ऋग्वेद (X-125) में भी आया है। इस सूक्त में वाग्देवी की जगद्व्यापक शक्ति का उदात्त वर्णन है।]

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
 अहं मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥1॥
 अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
 तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तः ॥2॥
 अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
 यं कामये तन्तभुग्नं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥3॥
 मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्रणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
 अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति, श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥4॥
 अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
 अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥5॥
 अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
 अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या यजमानाय सुन्वते ॥6॥
 अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
 ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥7॥
 अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
 परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव॥8॥

1. वाक् कहती है कि (अहम्) जगत्कारण-स्वरूप मैं (रुद्रेभिः वसुभि आदित्यैः विश्वदेवैः चरामि) रुद्रों, वसुओं, आदित्यों और विश्व देवों के साथ चलती हूँ। (अहम् उभा मित्रावरुणा विभर्मि) मैं दोनों मित्र और वरुण को धारण करती हूँ और (अहम् इन्द्राग्नी, अहम् उभा अश्विना) मैं इन्द्र और अग्नि तथा दोनों अश्विनों को

धारण करती हूँ।

2. (अहम् राष्ट्री) सवश्वरा मैं (वसूना सगमनी) धनों की प्राप्ति कराने वाली हूँ। (चिकितुषी) ब्रह्मज्ञान वाली मैं (यज्ञियानास् प्रथमा) पूज्यों में प्रमुख हूँ। (तां भूरिस्थात्रां माम्) विविध जागतिक प्रपञ्चरूप में विद्यमान मुझे (भूरि आवेशयन्तः देवाः पुरुषा व्यदधुः) अनेक प्रकार के स्वरूप ग्रहण करने वाले देवों ने बहुत स्थलों में विशेष प्रकार से धारण किया है।
3. (देवानाम् उत मानुषाणां जुष्टम्) देवताओं और मनुष्यों के प्रिय (इदम्) इस तथ्य को (स्वयम् एव बदामि) मैं स्वयं ही उपदिष्ट करती हूँ। (यं कामये) जिसे चाहती हूँ (तं तम् उग्रं तं ब्रह्माणं तम् ऋषिं तं सुमेधां कृणोमि) उस व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ, स्रष्टा, ऋषि तथा सुन्दर प्रज्ञा से युक्त करती हूँ।
4. (यः अन्नम् अत्ति) जो अन्न खाता है, (यः विपश्यति) जो देवता है (यः प्राणिति) जो श्वास ग्रहण करता है (यः ईम् उक्तं शृणोति) जो इस कथित शब्द समूह को सुनता है (मया सः) वह सब मेरे द्वारा ही करता है। (श्रुत श्रुधि) हे मित्र! सुनो (श्रद्धेयं ते वदामि) तुम्हें श्रद्धेय बात बताती हूँ कि (माम् अमन्तवः ते उप क्षियन्ति) मुझे न जानने वाले लोग तुम्हारे पास रहते हैं।
5. (ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ) ज्ञान के द्वेषी हिंसक का विनाश करने के लिए (अहं रुद्राय धनुरातनोमि) मैं रुद्र के लिए धनुष को खींचती हूँ। (अहं जनाय समदं कृणोमि) मैं स्तोता के लिए युद्ध करती हूँ। (अहं द्यावापृथिवी आविवेश) तथा मैं ही स्वर्ग-लोक और पृथिवी-लोक में आविष्ट हूँ।
6. (अहम् आहनसं सोमं बिभर्मि) मैं स्वर्ग लोक में विद्यमान शत्रुओं के नाशक सोम को धारण करती हूँ, (अहं त्वष्टारम् उत पूषणं भगम्) मैं त्वष्टा, पूषा और भग नामक देवताओं को भी धारण करती हूँ। (अहं हविष्मते सुन्वते यजमानाय) मैं हवन करने वाले

तथा सोम-सवन करने वाले यजमान के लिए (सुप्राव्या द्रविणा दधामि) सुन्दर रक्षणीय धन धारण करती हूँ।

7. (अस्य मूर्धन् पितरं सुवे) इस संसार के सिरपर मैं रक्षक नियुक्त करती हूँ (मम योनिः समुद्रे अप्सु अन्तः) मेरा उद्भव-स्थान समुद्र के जल के भीतर है (ततः विश्वा भुवनानि विविष्टे) वहाँ से समस्त भुवनों को व्याप्त कर विद्यमान होती हूँ (उत वर्षणा अमं द्याम् उपस्पृशामि) और मैं सुदूर स्थित द्युलोक को अपने मायात्मक शरीर से स्पर्श करती हूँ।
8. (विश्वा भुवनानि आरम्भभाण) समस्त भुवनों का आरम्भ करती हुई (अहम् एव बात इव प्रवामि) मैं ही स्वच्छन्द पवन के समान सर्वत्र व्याप्त होती हूँ। (दिवः परः) द्युलोक से परे और (एनापृथिव्यापरः) इस पृथ्वी से भी परे (महिम्ना एतावती सम्बभूव) अपनी महिमा से इतनी विशाल होती हूँ।

विषनिवारणम् (VI.12)

[इस सूक्त में सर्प-विष-निवारण के लिए मंत्र दिये गये हैं। अथर्ववेद के तान्त्रिक प्रयोगों में यह भी है। इसका देवता मरुत्मान् ! गरुड़ है जिसे सर्प का शत्रु कहा गया है।]

परि द्यामिव सूर्योऽहीनां जनिमागमम्।

रात्री जगदिवान्यद्धंसात् तेना ते वारये विषम् ॥1॥

यद् श्रद्धाभिर्यदृषिभिर्यद् देवैर्विदितं पुरा।

यद् भूतं भव्यमासन्वत् तेना ते वारये विषम् ॥2॥

मध्वा पृञ्चे नद्यः १ पर्वता गिरयो मधु।

मधु परुष्णी शीपाला शमास्ने अस्तु शं हृदे ॥3॥

1. (द्याम् परि सूर्य इव) आकाश के चारों ओर आने वाले सूर्य के समान तथा (हंसात् अन्यत्) हंस को छोड़कर* (जगत्) संसार के चारों ओर (छाने वाली) (रात्री इव) रात्रि के समान मैं (अहीनां जनिम् आगमन्) सर्पों की जाति के चारों ओर आ चुका हूँ- (तेन) उसी से (ते विषं वारये) तुम्हारे विष को मैं दूर हटाता हूँ।
2. (यत्) जिसे (ब्रह्मभिः ऋषिभिः देवैः) पुरोहितों, ऋषियों तथा देवताओं ने (पुरा विदितम्) पूर्वकाल में ही जान लिया था, (यत् भूतं भव्यम्) जो भूतकाल में था, भविष्य में भी रहेगा तथा (आसन्वत्) जो मुख सहित है अर्थात् जिसका उच्चारण होता है, (तेन ते विषं वारये) उसी मंत्र से तुम्हारे विष को दूर हटाता हूँ।
3. (नद्यः) नदियों को मैं (मध्वा) मधु से (पृञ्चे) मिश्रित कर रहा हूँ, (पर्वताः गिरयः) बड़े पहाड़ तथा छोटी पहाड़ियाँ सभी (मधु) मधु-रूप ही हैं। (शीपाला) शैवालों से भरी (परुष्णी) परुष्णी नदी भी (मधु) मधु रूप है - इन सबों से विष दूर होगा। (आसने) तुम्हारे मुख का (शम्) कल्याण तथा (हृदे) हृदय का भी (शम्, अस्तु) कल्याण हो।

1. कहा जाता है कि हंस पर रात्रि का प्रभाव नहीं पड़ता। वे प्रकाश में ही रहते हैं, जगे रहते हैं। इसीलिए हंसों को छोड़कर रात्रि का संसार पर प्रभाव कहा गया है।

5. शमी (केशरोगहरणम्) (VI.30)

[अथर्ववेद में कुछ वनस्पतियों की प्रार्थना मिलती है जिनमें अपरिमित शक्ति मानी गई है। केश-रोगों के निवारण के लिए शमी नामक वृक्ष की

प्रार्थना प्रस्तुत सूक्त में की गई है। केशों की वृद्धि, उनका काला बना रहना इत्यादि लाभों के लिए शमी-वृक्ष की उपयोगिता इसमें प्रदर्शित है।]

देवा इमं मधुना संयुतं यवं

सरस्वत्यामधि मणावचर्कषुः।

इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः

कीनाशा आसन्मरुतः सुदानवः॥११॥

यस्ते मदोऽवकेशो विकेशो

येनाभिहस्यं पुरुषं कृणोषि।

आरात् त्वदन्या वनानि वृक्षि

त्वं शमि शतवल्शा वि रोह ॥१२॥

बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतारि।

मातेव पुत्रेभ्यो मृड केशेभ्यः शमि ॥१३॥

1. (मधुना संयुतम्) मधु से सने हुए अर्थात् मीठे (इमं यवं) इस जौ को (देवाः) देवताओं ने (मणां) मानव जाति के हित के लिए (सरस्वत्याम् अधि) सरस्वती नदी के तट पर (अचर्कषुः) उत्पन्न किया था। (शतक्रतुः) शत-शत शक्तियों से युक्त (इन्द्रः) इन्द्र-देवता (सीरपतिः) हल का स्वामी (आसीत्) बना तथा (सुदानवः) प्रचुर दान करने वाले (मरुतः) मरुद्गण (कीनाशाः) हल चलाने वाले (आसन्) बने थे।
2. हे शमीवृक्ष! (यः ते मदः) तुम्हारा जो आनन्द या नशा (अवकेशः) पुरुषों को केशरहित करने वाला तथा (विकेशः) विकृत केश-सफेद आदि-करने वाला है, (येन) जिसके कारण तुम (पुरुषम् अभिहस्य कृणोषि) पुरुष को हास्यास्पद बना देते हो, (त्वत् अन्या वनानि) तुमसे भिन्न वृक्षों को (आरात्) दूर-दूर तक (वृक्षि) में काट देता हूँ (शमि) हे शमीवृक्ष! (त्वं शतवल्शा) तुम सौ शाखाओं से

युक्त होकर (विरोह) विशेषरूप से उगो।

3. (बृहस्पलाशे) बड़े-बड़े पत्तोवाले, (सुभगे) सौभाग्य-युक्त (वर्षवृद्धे) वर्षा में बढ़ने वाले तथा (ऋतावरि) प्राकृतिक नियम पर चलने वाले (शमि) हे शमीवृक्ष! (पुत्रेभ्यो माता इव) पुत्रों को सुख देने वाला माता के समान तुम (केशेभ्यः) हमारे केशों को (मुड) दुःख-सुख प्रदान करो।

उपनिषद् भाग

[उपनिषद् ज्ञान के मानसरोवर हैं। वेद का चरम लक्ष्य तत्व-ज्ञान उपनिषद् में ही सार्थक हुआ है। यह वही अमर ज्ञान है जिसको प्राप्त करके विश्व के समस्त मानव सुख और शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, आत्मा, परमात्मा, परलोक, पुनर्जन्म, तथा मोक्ष आदि के रहस्य का यह ज्ञान एकान्त, शान्त तपोवनों में सिद्ध-पुरुषों व ऋषि-मुनियों के समीप बैठ कर प्राप्त किया गया, इसीलिए इसका नाम उपनिषद् पड़ा। इस ज्ञान द्वारा अज्ञान का विनाश ब्रह्म की ओर गति तथा जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा मिलकर मोक्ष को प्राप्ति होती है, इसीलिए भी इसे उपनिषद् कहते हैं।]

1. ईशावास्योपनिषद् (1, 2, 9, 11, 18)

यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता का 40 वां अध्याय है। इसमें ईश्वर को ही समस्त जगत् का स्वामी बताकर त्याग की भावना से उपयोग करने, लोभ में पड़कर पराये धन की इच्छा न करने तथा निरन्तर कर्म करते रहकर ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करने का आदेश दिया गया है। यहाँ यह भी बताया गया है कि केवल कर्म अथवा केवल ज्ञान का आश्रय लेना ठीक नहीं है, अपितु ज्ञान एवं कर्म दोनों का समन्वय ही श्रेयस्कर है। अन्त में इस उपनिषद् में भगवान् से यह प्रार्थना की गई है-

कि वह धन की प्राप्ति के लिए हमें अच्छे मार्गों पर ले जाए और हमारे पापों को दूर करें।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
 तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥1॥
 कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
 एवं त्वयि नान्थेयेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥2॥
 अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
 ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां स्ताः॥3॥
 विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
 अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥4॥
 अग्ने नयं सुपया राये अस्मान्
 विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
 युयोध्यस्मज्जुहराणमेनो
 भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥5॥

1. (जगत्याम्) विश्व में (यत्) जो (किञ्च) कुछ भी (इदं सर्वं जगत्) यह सम्पूर्ण स्थावर-जंगम संसार है, (तत् सर्वम्) वह सब कुछ (ईशा वास्यम्) ईश्वर से व्याप्त है। इसीलिए (तेन) उस शास्त्रोक्त (त्यक्तेन) त्याग-भाव से संसार का (भुञ्जीथाः) उपमोज करो। (कस्यस्वित्) किसी भी व्यक्तिगत अथवा सार्वजनिक (धनम्) (मा गृधः) हड़पने की इच्छा न करो।
2. मनुष्य (इह) इस संसार में शास्त्र-विहित (कर्माणि) कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ ही (शतं समाः) सैकड़ों वर्षों तक (जिजीविषेत्) जीने की इच्छा करे। हे मानव! (एवम्) इस प्रकार (त्वयि) तेरे पास (इतः) इसके अतिरिक्त (अन्य धान) दूसरा विकल्प नहीं (अस्ति) है। इस प्रकार के सद् आचरण से (नरे)

मनुष्य में (कर्म) अशुभ कर्म (न लिप्यते)। लिप्त नहीं होता अर्थात् वेद-शास्त्रों के अनुसार निरन्तर कर्म करते रहने से मनुष्य अशुभ कर्मों से बच जाता है।

3. (ये) जो लोग, केवल (अविधाम्) भौतिक कर्मों को (उपासते) करते हैं (ते) वे लोग (अन्धतमः) घने अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। और (ततः) उससे भी (भूयः) अधिक (ते) वे लोग (तमः प्रविशन्ति) अन्धकार में प्रवेश करते हैं (ये उ) जो लोग (विद्यायाम्) केवल ज्ञान में ही (रताः) लीन रहते हैं। (अपनी तथा विश्व की वास्तविक उन्नति के लिए मानव को अपने जीवन में ज्ञान एवं कर्म दोनों को ही अपनाना चाहिए। दोनों में से किसी एक की भी उपेक्षा उचित नहीं।
4. (यः) जो व्यक्ति (विमृद्य) ज्ञान की (अविद्यां च) और कर्म को अर्थात् (तत् उभयम् सह) उन दोनों को एक साथ (वेद) जानता है- अपने जीवन में दोनों का एक साथ उपयोग करता है, वह (अवियद्या) कर्म से अर्थात् भौतिक उन्नति से (मृत्युम्) मौत को अथवा मर्त्यलोक को (तीर्त्वा) पार करके (विद्यया) ज्ञान अर्थात् आध्यात्मिक उन्नति द्वारा (अमृतम्) अमृत रूप ब्रह्म को अथवा मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त कर लेता है।
5. (अग्ने) हे सबके अग्रणी परमात्मन्! आप (अस्मान्) हमें (राये) धन की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे रास्ते से (नय) ले जाइए अर्थात् हम अच्छे उपायों द्वारा ही धन कमायें। (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) कर्मों को (विद्वान्) जानने वाले (देव) हे देव! (अस्मत्) हमारे पास से (जुहुराणम्) पुनः पुनः जन्ममरण के चक्र में डालने वाले (एनः) पाप को (युयोधि) दूर कीजिए। हम (ते) तुम्हारे लिए (भूयिष्ठाम्) अत्यधिक (नमः उक्तिम्) नमस्कार-रूपी वाणी को (विद्यैम) प्रस्तुत करते रहें। हम सदैव अपनी वाणी से आपकी स्तुति करते रहें।

केनोपनिषद् (2 , 8 , 11 , 12)

[यह सामवेद की तलवकार-शाखा से सम्बद्ध है। इसका प्रथम वाक्य है - केनेषितं पतति। प्रथम शब्द के आधार पर ही इसका यह नाम पड़ा है। इसमें छोटे-छोटे चार खण्ड हैं जो गद्य-पद्यात्मक हैं। निम्नांकित मन्त्रों में ब्रह्म के उपास्य तथा निर्गुण स्वरूपों का अन्तर दिखाया गया है। उपास्य ब्रह्म से निर्गुण ब्रह्म उपर है। यह ब्रह्म रहस्यात्मक भी है। संसार के बन्धनों को, इन्द्रियादि-समूह को छोड़कर ही कोई इस ब्रह्म को पा सकता है, अमर बन सकता है।]

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्
वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषज्ञश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥1॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति
येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि
नेदं यदिदमुपासते ॥2॥
यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विज्ञानतां विज्ञानमविज्ञानताम् ॥3॥
प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥4॥

1. (यद्) जो ब्रह्म (श्रोत्रस्य श्रोत्रं) कानों की बाह्य शक्ति के भीतर रहने वाली शक्ति है, कान का भी कान है, (मनसो मनः) मन का भी मन अर्थात् नियामक है, (वाचः ह वाचम्) वाणी की

भी वाणी अर्थात् उसका नियंत्रण करने वाला है, (स उ प्राणस्य प्राणः) वही प्राणों का भी प्राण है, (चक्षुषः चक्षुः) वह आँख की भी आँख है अर्थात् इन सभी का नियन्त्रण करने वाली अद्भुत शक्ति है- उसे पाने के लिए (धीराः) पण्डित लोग (अतिमुच्य) बाह्य इन्द्रियों के प्रति मोह-ममता का त्याग करके (अस्मात् लोकात् प्रेत्य) इस भौतिक संसार से मुक्त होकर (अमृताः भवन्ति) अमर बन जाते हैं, उस ब्रह्म में मिल जाते हैं।

2. (यद्) जो ब्रह्म (श्रोत्रेण न शृणोति) बाहरी कान से नहीं सुनता अर्थात् जिसे सुनने के लिए मानवों के समान कान की आवश्यकता नहीं है, अपितु (येन) जिस ब्रह्म का ज्ञान पाकर (इदं श्रोत्रं श्रुतम्) विद्वान् लोग इस भौतिक कान की शक्ति का रहस्य समझते हैं, (त्वं तदेव ब्रह्म विद्धि) तुम उसे ही ब्रह्म समझो, (नेदं यदिदम् उपासते) ब्रह्म वह नहीं है जिसकी उपासना लोग करते हैं - ब्रह्म का सगुण या उपास्य रूप वास्तविक नहीं है।
3. (ब्रह्म की रहस्यात्मकता नहीं है) (यस्य अमतं) जिस मनुष्य को यह बोध है कि मैंने ब्रह्म को नहीं समझा, (तस्य मतम्) उसी ब्रह्म-ज्ञानी को ब्रह्म का स्वरूप ज्ञात है। दूसरी ओर (यस्य मतं) जिस मनुष्य को यह बोध है कि मैंने ब्रह्म को जान लिया (सः न वेद) वह ब्रह्म के वास्तविक रूप को नहीं जानता। वह ब्रह्म तो (विजानताम्) विशेष ज्ञान का दम्भ रखने वालों के लिए (अविज्ञातम्) वस्तुतः अज्ञात ही रहता है और (अविजानताम्) विशेष ज्ञान का दम्भ न रखने वाले पुरुषों को ही (विज्ञातम्) वास्तव में वह ज्ञात रहता है।
4. (प्रतिबोधविदित) प्रत्येक ज्ञान की प्रेरक शक्ति के रूप में जाने गये ब्रह्म को (मतं) समझ लेने पर, कोई व्यक्ति (अमृतत्वं हि विन्दते) अमरता प्राप्त कर लेता है, ब्रह्म में लीन हो जाता है। (आत्मना) अपने स्वरूप को समझ लेने पर उसके द्वारा (वीर्यं

विन्दते) अपनी वास्तविक शक्ति को पा लेता है। तथा (विद्यया) आत्मज्ञान के द्वारा (अमृतं विन्दते) अमरता प्राप्त करता है।

कठोपनिषद् (I ii-2, 5, 18, 23, I iii-14)

[यह उपनिषद् यजुर्वेद की कठ शाखा से सम्बद्ध है। इसमें यम और नचिकेता की मनोहर कथा द्वारा मानव-जीवन के कल्याण का रास्ता बताया गया है और आत्मा के स्वरूप का चित्रण करके उसकी प्राप्ति के उपाय का भी उल्लेख किया गया है। यहाँ पर अज्ञान की निद्रा को त्याग कर जागने तथा श्रेष्ठ जनों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करने का उद्बोध न भी है।]

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः।

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमा वृणीते ॥1॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः

स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः॥

दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा

अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥2॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्

नायं कुतश्चिन्न वभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो

न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥3॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो

न मेधया न बहुता श्रुतेन।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः

तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥4॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गम्पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥5॥

1. (यमराज नचिकेता से कहता है-) (श्रेयश्च) वास्तविक कल्याण अथवा मोक्ष तथा (प्रेयश्च) ऊपर से प्रिय लगने वाला भौतिक उन्नति का मार्ग अथवा विचार- ये दोनों (मनुष्यम् एतः) मनुष्य के समक्ष आते हैं। (धीरः) बुद्धिमान् व्यक्ति (तौ सम्परीत्य विविनक्ति) उन दोनों के विषय में अच्छी तरह सोच-समझ कर विवेचना करता है। और वह (प्रेयसः) ऊपर से प्रिय लगने वाले भौतिक सुख की अपेक्षा (श्रेयः अभिवृणीते) मोक्ष-साधन रूप कल्याणकारी मार्ग को ही चुनता है। किन्तु (मन्दः) मूर्ख व्यक्ति (योगक्षेमात्) भौतिक सम्पदा के संग्रह एवं रक्षण के लिए (प्रेयः वृणीते) प्रेय मार्ग को चुन लेता है।
2. (अविद्यायाम् अन्तरे) अविद्या अर्थात् अज्ञान के बीच में (वर्तमानाः) पड़े हुए अथवा फँसे हुए और (स्वयं -धीराः पण्डितम्मन्यमानाः) अपने को बुद्धिमान् तथा पंडित मानते हुए - ऐसे (मूढाः) मूर्ख-अविवेकी व्यक्ति (दन्द्रम्यमाणाः) जन्ममृत्यु- रोग आदि अनेक प्रकार की विषम स्थितियों को प्राप्त करते हुए उसी प्रकार (परियन्ति) स्वर्ग-नरकादि लोकों में भटकते रहते हैं (यथा) जिस प्रकार (अन्धेनैव नीयमानाः अन्धाः) अन्धे के द्वारा ही कुमार्ग में ले जाये जाते हुए अन्धे भटकते हैं।
3. (विपश्चित्) चैतन्यरूप आत्मा* (न जायते प्रियते वा) न तो उत्पन्न होता है और न मरता है। (अयम्) यह आत्मा (कुतश्चित् न बभूव) किसी से उत्पन्न नहीं हुआ अर्थात् इसका कोई कारण नहीं है। आत्मा अनादि और अजन्मा है। साथ ही इस आत्मा से (कश्चित् न बभूव) कोई अन्य प्राणी एवं पदार्थ उत्पन्न नहीं हुआ। वस्तुतः आत्मा कार्य-कारणभाव से परे है। यह आत्मा (अजः) जन्म न होने से अज है (नित्यः) मरणरहित होने से नित्य है (शाश्वतः) सदा रहने वाला (पुराणः) पुराना होते हुए भी नया है। अर्थात् सृष्टि से लेकर अब तक नये-नये शरीर धारण करता चला आया है। यह आत्मा (शरीरे

हन्यमाने) शरीर के मारे अथवा काटे जाने पर भी (न हन्यते) नहीं मारा जाता है।

4. (अयम् आत्मा) यह आत्मा* (प्रवचनेन न लभ्यः) केवल वेदादि-शास्त्रों का प्रवचन करने से प्राप्त नहीं हो सकता (न मेधया) न केवल धारण-शक्ति अथवा बुद्धि से (न श्रुतेन) और न ही केवल शास्त्रचर्चा एवं कथा आदि सुनने मात्र से प्राप्त हो सकता है। अपितु (यम् एव) जिस साधक को उसकी साधना एवं उसके सदाचरण से प्रसन्न होकर (एष) यह परमात्मा, स्वयं ही (बृणुते) वर लेता है अर्थात् अपना लेता है (तेन) उसी साधक द्वारा (लभ्यः) यह परमात्मा प्राप्त हो सकता है। इतना ही नहीं, (एष आत्मा) यह परमात्मा (तस्य) उस आत्मज्ञानी साधक के लिए (स्वां तनूम्) अपने आनन्दमय रूप को (विवृणुते) प्रकाशित कर देता है।
 5. (अज्ञान की निद्रा में सोये हुए हे मनुष्यों!) (उत्तिष्ठत) उठो अर्थात् अज्ञान की निद्रा को त्याग कर ज्ञान प्राप्त करो (आग्रत) जागो, - विद्या और ज्ञान में प्रवीण बनो। (वरान् प्राप्य) श्रेष्ठजनों, आचार्यों के पास जाकर (निबोधत) आत्मतत्त्व को जानो। (कवयः) विद्वान् एवं तत्त्वदर्शी लोग (तत्पथः) उस आत्मज्ञान एवं मोक्ष के मार्ग को (क्षुरस्य निशिता दुरल्यया, धारा इव) कुरे की तेज और कठिनाई से चलने योग्य धार के समान (दुर्गं वदन्ति) कठिनता से प्राप्त होने योग्य बताते हैं।
1. यहाँ आत्मा का अर्थ शरीरधारी जीवात्मा है।
 2. यहाँ आत्मा का अर्थ परमात्मा अथवा ब्रह्म है।

प्रश्नोपनिषद् (I-8, II-12, 13, V - 7)

[यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इसमें छह ऋषियों के प्रश्नों का समाधान पिप्पलाद ऋषि करते हैं। इसीलिए इसका विभाजन छह प्रश्नों में किया गया है। यहाँ दिये गये मन्त्रों में सूर्य, प्राण तथा ओंकार की महत्ता बतलायी गयी है। ये तीनों ब्रह्म के रूप हैं।]

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं
 परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्॥
 सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः
 प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥1॥
 या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या
 श्रोत्रे या च चक्षुषि
 या च मनसि सन्तता
 शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः॥2॥
 प्राणस्येदं वशे सर्वं
 त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्
 मातेव पुत्रान् रक्षस्व
 श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति ॥3॥
 ऋग्भरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं
 साममियत् तत्कवयो वेदयन्ते।
 तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति
 विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥4॥

1. ब्रह्म ज्ञानी लोग (विश्वरूप) सभी रूपों से युक्त, (हरिणं) किरणपूर्ण, (जातवेदसम्) सभी ज्ञानों को उत्पन्न करने वाले अथवा सभी पदार्थों को जानने वाले, (परायणं) सभी लोगों के प्राणस्वरूप, (ज्योतिः) प्रकाशरूप, (एकं) अद्वितीय तथा (तपन्तम्) ताप या ऊष्मा देने वाले सूर्य को जानते हैं। (सहस्ररश्मिः) हजारों किरणों से युक्त, (शतधा वर्तमानः) नाना प्राणियों के रूप में विद्यमान तथा (प्रजानां प्राणः) सभी प्राणियों का प्राण-स्वरूप (एष सूर्यः उदयति) यह सूर्य उग रहा है। यह सूर्य परमात्मा का रूप है।
2. हे प्राण! (या ते तनुः वाचि प्रतिष्ठिता) तुम्हारा जो स्वरूप वाणी में प्रतिष्ठित है, (या श्रोत्रे) जो स्वरूप कानों में निवास करता है, (या च चक्षुषि) जो रूप आंखों में है (या च मनसि सन्तता) तथा जो आकार मन में फैला हुआ है अर्थात् इन सभी इन्द्रियों में प्राण-वायु का जो रूप है (तां शिवां कुरु) उसे तुम कल्याणकारी बनाओ, (मा उत्क्रमीः) हमें छोड़कर तुम मत जाना।

3. (त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितं) स्वर्गादि तीनों लोकों में जो चीजें वर्तमान हैं, (इदं सर्वं प्राणस्य वशे) वे सभी प्राण के वश में हैं। हे प्राण! (पुत्रान् माता इव रक्षस्व) जिस प्रकार पुत्रों की रक्षा माता करती है उसी प्रकार तुम हमारी रक्षा करो। (नः श्रीः प्रज्ञां च विधेहि) हमें सम्पत्ति और बुद्धि प्रदान करो।
4. (स विद्वान्) ओंकार की तीन मात्राओं के विभागों के जानने वाला ज्ञानी (एतम् ऋग्भिः) इस मनुष्य लोक को ऋचाओं के द्वारा, (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्षलोक को (यजुर्भिः) यजुर्वेद मन्त्रों के द्वारा तथा (यत् कवयो वेदयन्ते तत्) जिस लोक को केवल मधावी लोग ही जानते हैं उस स्वर्गलोक को (सामभिः) साम-मन्त्रों के द्वारा-इस प्रकार वह (तम्) उस समस्त लोक-समूह को (आयतनेन ओंकारेण एव) फैले हुए, विभक्त ओंकार की मात्राओं के द्वारा ही (अन्वेति) व्याप्त करता है। (यत् शान्तम्) जो ब्रह्म शान्त-स्वरूप, (अजरम्) अजर, (अमृतम् अभयं परंच) अमृत-स्वरूप, अभय और सर्वोपरि है, (तत्) उसे भी ओंकार के द्वारा व्याप्त किया जाता है। ओंकार ब्रह्म का बोधक है।

5. मुण्डकोपनिषद् (I.i-1, 4, 5, 8; I,ii-13, II,ii-8,10; III. i-6, III, ii - 8)

मुण्डकोपनिषद् अथर्ववेद की शौनक शाखा से सम्बद्ध है। मुण्डकोपनिषद् से उद्धृत प्रस्तुत अंशों में ब्रह्मविद्या का इतिहास बताते हुए कहा गया है कि ब्रह्मा ने सर्वप्रथम अपने ज्येष्ठ पुत्र को ब्रह्म-विद्या का उपदेश दिया और विद्या के - “परा-एवं अपरा - ये दो भेद भी बताये। यहाँ यह भी वर्णन है कि ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर मन के सभी संशय मिट जाते हैं। ब्रह्म के दिव्य प्रकाश के सम्मुख सूर्य, चन्द्रादि का प्रकाश भी फीका है। वस्तुतः ये सब भी ब्रह्म के प्रकाश से ही प्रकाशित हैं। आगे चलकर यह शाश्वत तथ्य किया गया है कि- सत्य की ही विजय होती है, असत्य की नहीं। अन्त में सुन्दर उपमा द्वारा समझाया गया है कि जिस प्रकार दिया अन्ततोगत्वा अपना नाम एवं रूप छोड़ कर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता भी इस नाग और रूप वाले जगत् एवं शरीर को छोड़कर ब्रह्म में लीन हो जाता है।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संवभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥1॥
 तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह
 स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥2॥
 तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः
 शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।
 अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥3॥
 तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
 अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥4॥
 तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्
 प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
 येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं
 प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥5॥
 मिद्यते हृदयग्रन्थिरिच्छन्ते सर्वसंशयाः।
 क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥6॥
 न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
 नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
 तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
 तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥7॥
 सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
 येनाक्रमन्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं विधानम् ॥8॥
 यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
 अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
 तथा विद्वान् नाम रूपाद् विमुक्तः
 परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥9॥

1. (ब्रह्म देवानां प्रथमः संबभूव) ब्रह्म, देवताओं में सबसे पहले उत्पन्न अथवा प्रकट हुआ, वह (विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता संबभूव) जगत् का रचयिता और भूः भूवः स्वः आदि लोकों एवं उनमें रहने वाले प्राणियों का रक्षक हुआ। (सः) उसने (ज्येष्ठपुत्राय अथर्वाय)

अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वा के लिए (सर्वविद्याप्रतिष्ठां ब्रह्म-विद्याम्) सब विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या को (प्राह) कहा अर्थात् उसका उपदेश किया।

2. (अपने पिता ब्रह्मा से प्राप्त विद्या का उपदेश अथर्वा ने अपने शिष्य अंगिरा को, अंगिरा ने भारद्वाज गोत्रोत्पन्न सत्यवाह को और सत्यवाह ने अंगिरस् को किया। तत्पश्चात् अत्यधिक धन-धान्यशाली एवं महादानी महाशाल नामक शुनक ऋषि के पुत्र ने अंगिरस् के समीप आकर श्रद्धापूर्वक यह पूछा - “ भगवन् वह कौन सा तत्व है जिसके जान लेने पर सब कुछ ज्ञान लिया जाता है” इस प्रकार महाशाल शौनक द्वारा पूछे जाने पर) (स तस्मै ह उवाच) वह अंगिरस् उस शौनक से बोला (इति ह विद्ये वेदितव्ये) यह निश्चित बात है कि मोक्ष के इच्छुक व्यक्ति को दो विद्याएँ जाननी चाहिए (यद् ब्रह्मविदो वदन्ति) जैसा कि ब्रह्मवेत्ता विद्वान् लोग बताते हैं, वे दो विद्याएँ हैं - (परा चैव अपरा च) परा अर्थात् अध्यात्मतत्त्व का ज्ञान कराने वाली और दूसरी अपरा अर्थात् भौतिक तत्वों एवं सांसारिक कर्मों का ज्ञान कराने वाली।
3. (तत्र अपरा) उन दोनों विद्याओं में से अपरा विद्या के अन्तर्गत ये आते हैं - “ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद” इसके अतिरिक्त इन चारों वेदों के ये छह अंग हैं - शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये भी अपरा विद्या ही कहे जाते हैं। (अथ परा) उपर्युक्त अपरा विद्या के अतिरिक्त दूसरी विद्या है - परा। (यया तत् अक्षरम् अधिगम्यते) जिस परा-विद्या द्वारा वह अविनाशी ब्रह्म प्राप्त किया जाता है।
4. (तपसा) तपस्या अर्थात् ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, जप एवं ब्रह्मचिन्तन द्वारा (ब्रह्म चीयते) ब्रह्म अथवा परमात्मा प्राप्त किया जाता है। (ततः) उस पर तप से ही, अर्थात् शारीरिक श्रम से (अन्नम् अभिजायते) अन्न उत्पन्न होता है। (अन्नात् प्राणः) अन्न से प्राण अर्थात् जीवनी शक्ति और फिर (मनः) मन अर्थात् सोचने-समझने की शक्ति उत्पन्न होती है, तत्पश्चात् मन के शुभ संकल्पों द्वारा (सत्यम्)

सत्य आचरण होते हैं, और सत्य आचरणों के अनुरूप ही (लोकाः) सम्पूर्ण लौकिक व्यवहार एवं कार्य सम्पन्न होते हैं, तथा अन्त में (कर्मसु च) उपर्युक्त कर्मों के परिणामस्वरूप (अमृतम्) कभी नष्ट न होने वाले अमृत के समान मधुर कर्म-फल उत्पन्न होते हैं।

5. ब्रह्मज्ञान के लिए जब शिष्य गुरु की शरण में आए तब (स) वह (विद्वान्) ब्रह्मवेत्ता गुरु, (सम्यक् उपसन्नाय) शास्त्र में बताई गई विधि के अनुसार भक्तिभाव-पूर्वक समीप में आये हुए (प्रशान्तचित्ताय) पूर्ण रूप से शान्त-चित्त वाले (शमान्विताय) शम से युक्त अर्थात् अपनी इन्द्रियों को विषयों एवं उनसे होने वाले सुख-दुखों से विमुख रखने वाले, शिष्य के लिए (तां ब्रह्म विद्याम्) वेदान्त शास्त्र में प्रमाणित उस ब्रह्मविद्या को (तत्त्वतः) वास्तविक रूप में (प्रोवाच) कहे अर्थात् बताये, (येन) जिससे वह शिष्य (पुरुष) समस्त ब्रह्माण्ड में शयन करने वाले अर्थात् सर्वव्यापक (सत्यम्) सत्यस्वरूप (अक्षरम्) कभी नष्ट न होने वाले ब्रह्म को (वेद) जान सके।
6. (तस्मिन् परावरे दृष्टे) उस कार्यकारणरूप सर्वात्मक ब्रह्म का दर्शन अथवा साक्षात्कार हो जाने पर (अस्य) ब्रह्मवेत्ता साधक की (हृदयग्रन्थिः मिद्यते) हृदय में रहने वाली अहंकार अथवा अज्ञान की ग्रन्थियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं, (सर्वसंशयाः छिद्यन्ते) सभी प्रकार के संशय मिट जाते हैं (अस्य कर्माणि च क्षीयन्ते) और इस आत्मज्ञानी के जन्ममरणादि बन्धन के हेतुरूप कर्मनष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार करके वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है।
7. ब्रह्म स्वयं प्रकाशमान है। इसीलिए (तत्र सूर्यः न भाति) वहाँ अर्थात् उस ब्रह्म को सूर्य प्रकाशित नहीं कर सकता अथवा उस अद्वितीय ब्रह्मज्योति के सम्मुख सूर्य प्रकाशित नहीं होता। आत्मज्योति की तुलना में सूर्य का प्रकाश भी फीका है। इतना ही नहीं, उस आत्मप्रकाश के सामने (न चन्द्रः तारकस) ये चन्द्र और तारे भी प्रकाशित नहीं होते (न इमा विद्युतः भान्ति) ये बिजली अथवा विद्युत् की ज्योतियाँ भी उस दिव्य-ज्योति के समक्ष नहीं चकमतीं अर्थात् उसके सामने प्रभाहीन हो जाती हैं। (कुतः अयम् अग्निः) और फिर इस पृथ्वी पर

स्थित अग्नि की क्या हस्ती? अर्थात् यह उस ज्योतिः स्वरूप ब्रह्म को कैसे प्रकाशित कर सकती है? वस्तुतः (सर्वम्) उपर्युक्त समस्त सूर्य, चन्द्र, आदि (तमेव भान्तम्) उस ब्रह्म स्वरूप के भासित अथवा दीप्त होने पर ही (अनुभाति) भासित या प्रकाशित होते हैं। (इदं सर्वम्) ये सारे, सूर्य चन्द्र आदि अथवा यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही (तस्य भासा) उस स्वप्रकाश रूप ब्रह्म की दिव्य ज्योति से ही (विभाति) प्रकाशित होता है।

8. (सत्यम् एव जयते) सत्य की ही विजय होती है, (नानृतम्) असत्य की नहीं (अर्थात् अन्त में सत्य अथवा सत्यवादी ही जीतता है, असत्य अथवा असत्यवादी नहीं)। (सत्येन) सत्य के द्वारा ही (देवयानः पन्था विततः) वह देवयान अर्थात् मोक्ष का मार्ग बना है या विस्तृत हुआ है, (येन) जिस देवयान मार्ग से (हि आप्तकामाः) निश्चित रूप से तृष्णा-रहित (ऋषयः) ऋषिगणः अथवा उपासक (आक्रमन्ति) मृत्युलोक को पार कर अथवा लौंघ कर जाते हैं और (यत्र) जिस मोक्ष के धाम में (सत्यस्य) सत्य का अथवा सत्यस्वरूप परब्रह्म का (तत्) वह (परमं निधानम्) सर्वश्रेष्ठ कोषागार है। (अभिप्राय यह है कि सत्य आचरण एवं सत्यस्वरूप ब्रह्मज्ञान के द्वारा जिस ब्रह्मलोक अथवा मुक्ति के धाम में जाते हैं वहाँ उस सत्यस्वरूप ब्रह्म की दिव्य ज्योति एवं आनन्द का अद्वितीय कोष है, जिसके कारण मुक्तात्मा भी आनन्दमय रहते हैं)।
9. (यथा) जिस प्रकार (स्यन्दमानाः नद्यः) बहती हुई नदियाँ, अन्त में (नाम-रूपे विहाय) अपने नामों एवं रूपों को छोड़कर (समुद्रे अस्तं गच्छन्ति) समुद्र में मिल जाती हैं। अर्थात् समुद्र रूपवाली हो जाती है तथा उसी प्रकार विद्वान् ब्रह्मज्ञानी (नामरूपात् विमुक्तः) नाम-रूप वाले जगत् से और जगत् की विषय-वासनाओं से मुक्त होकर (परात्परम्) लोक और परलोक दोनों से श्रेष्ठ (दिव्यम्) प्रकाशस्वरूप (पुरुषम्) समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त ब्रह्म को (उपैति) प्राप्त कर देता है अर्थात् ब्रह्म-वेत्ता स्वयं ब्रह्म-रूप ही हो जाता है।

6. एकादशोऽनुवाकः

[यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से संबद्ध है। तैत्तिरीय उपनिषद् से उद्धृत इस अंश में उन वाक्यों का उल्लेख है जिनका उपदेश आचार्यगण शिष्यों को सम्पूर्ण वेद-विद्या पढ़ाकर उन्हें गुरुकुल से वापस भेजते समय किया करते थे। छात्रों के समावर्तन संस्कार के अवसर पर इन वाक्यों का विशेष-रूप से प्रयोग होता था। आज भी विश्व-विद्यालयों में दीक्षान्त समारोह के अवसर पर उपाधिवितरण के समय कुलपति उन्हीं वाक्यों का उच्चारण कहीं मूल-रूप से तथा कहीं हिंदी अथवा अंग्रेजी में अनुवाद करके करते हैं।]

वेदमनुच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति-सत्यं वद। धर्मुं चर। स्वाध्यायान् मा प्रमदः।
आचार्याय प्रियं धन माहत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।

सत्यान् प्रमदितव्यम्। धर्मान् प्रमदितव्यम्।

कुशलान् प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।
देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥1॥

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि,

नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि

तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि ॥2॥

ये के चास्मच्छेयांसो ब्राह्मणाः तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्।

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्। श्रिया देयम्।

द्विया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम् ॥3॥

अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः
संमर्शिनः। सुक्ता आयुक्ताः।

अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः॥4॥

अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः।

अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते

तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथाः॥5॥

एष आदेशः। एष उपदेशः।
 एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्।
 एवमुपासितव्यम्। एवमुचैतदुपास्यम्॥६॥

(वेदम् अनूच्य आचार्यः अन्तेवासिनम् अनुशास्ति) वेद का अध्ययन कराकर आचार्य अपने शिष्य को ओदश एवं उपदेश देता है-

(सत्यं वद) सच बोलो। (धर्मं चर) धर्म का आचरण करो। (स्वाध्या यात् मा प्रमदः) स्वाध्याय अर्थात् वेदादि सद्-ग्रन्थों के अध्ययन में प्रमाद मत करो। (आचार्याय प्रियं धनम् आहृत्य) आचार्य के लिए प्रिय धन गुरुदक्षिणा के रूप में लाकर और उन्हें समर्पित करके (प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः) सन्तान के तारतम्य को अर्थात् पुत्र-पौत्र आदि की परम्परा को मत तोड़ो। (विवाह द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर परिमित एवं योग्य सन्तान उत्पन्न करो।)

(सत्यात् न प्रमदितव्यम्) सच बोलने में आलस्य या देर नहीं करनी चाहिए (धर्मात् न प्रमदितव्यम्) / धर्म में अर्थात् धार्मिक यज्ञ, दान आदि कार्यों में भी आलस्य नहीं करना चाहिए। (कुशलात् न प्रमदितव्यम्) अपनी कुशलता के अर्थात् दीर्घायु एवं स्वास्थ्य-लाभ करने के कार्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिए। (भूत्यै न प्रमदितव्यम्) ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए उचित उपायों को करने में प्रमाद नहीं करना चाहिए। (स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्) अध्ययन एवं अध्यापन के कार्यों में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

(देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्) देवकार्य, यज्ञादि और पितृ-कार्य अर्थात् माता-पिता की सेवा एवं श्राद्ध आदि कार्यों में भी प्रमाद नहीं करना चाहिए। (मातृदेवो भव) माता को देवता के समान पूजनीय समझो। (पितृदेवो भव) पिता को देवता समझो। (आचार्यदेवो भव) गुरु को देवता मानो। (अतिथिदेवो भव) अतिथि को भी देवतुल्य समझो। (यान्यनविद्यानि कर्माणि) जो अनिन्दित अर्थात् सत्कर्म हैं (तानि सेवितव्यानि) उन्हीं को करना चाहिए, (नो इतराणि) उनसे भिन्न अर्थात् दुष्कर्म नहीं करना चाहिए।

(यान्यस्माकं सुचरितानि) हमारे द्वारा, आचार्यों के द्वारा किये गये जो शास्त्रानुकूल अच्छे कर्म हैं (तानि सेवितव्यानि) उन्हीं को करना चाहिए (नो इतराणि) उनसे भिन्न जो शास्त्रविरुद्ध एवं बुरे कर्म हैं उन्हें नहीं करना चाहिए।

(अनुचित कार्य किसी भी रूप में किसी भी स्थिति में नहीं करने चाहिए, भले ही वे गुरु के द्वारा ही किये गये क्यों हों।)

(ये के च अस्मत् श्रेयांसः ब्राह्मणाः) और जो कोई भी हमारी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ ब्राह्मण एवं विद्वज्जन हों, (तेषां त्वया आसनेन प्रश्वसितव्यम्) उनको तुम्हें-बैठने के लिए आसन देकर तथा अन्य ऐसी ही समुचित सेवा द्वारा संतुष्ट करना चाहिए। (श्रद्धया देयम्) श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिए। (अश्रद्धया अदेयम्) श्रद्धा के बिना दान नहीं देना चाहिए। (श्रिया देयम्) “अपने पास लक्ष्मी अर्थात् अपनी आवश्यकता से अधिक पर्याप्त धन है”, ऐसा समझकर उदारतापूर्वक दान देना चाहिए। (द्विया देयम्) “समर्थ होते हुए भी समुचित अवसरों एवं स्थानों पर दान न देने से लोग क्या कहेंगे” - इस प्रकार की लोक-लज्जा से प्रेरित हो कर भी दान देना चाहिए। (भिया देयम्) “दान न देने से पाप लगेगा और परलोक में सुख की प्राप्ति नहीं होगी” - इस प्रकार भय से भी दान करना चाहिए। (संविदा देयम्) विवेकपूर्वक अर्थात् देश, काल एवं पात्र के अनुसार यथायोग्य समुचित मात्रा में दान देना चाहिए। (अभिप्राय यह है कि मनुष्य को दान अवश्य करना चाहिए भले ही वह लोकलज्जा से बचने के लिए हो अथवा पाप एवं उसके फल से बचने के लिए हो अथवा स्वर्गप्राप्ति की कामना से हो।

(अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्ता विचिकित्सा वा स्यात्) और यदि तुम्हें कभी कर्तव्य-अकर्तव्य अथवा आचार-अनाचार के विषय में संदेह उत्पन्न हो, तब (ये तत्र) जो भी उस समय एवं उस स्थान पर (ब्राह्मणाः संमर्शिनः) विद्वानों एवं विचारवान् (युक्ताः आयुक्ताः) शास्त्रानुकूल कार्यों में संलग्न एवं कर्तव्याकर्तव्य के विषय में स्वतन्त्र निर्णय लेने में कुशल (अलूक्षाः) क्रोध रहित, शान्तस्वभाव वाले और (धर्मकामाः स्युः) निःस्वार्थ भाव से धर्म की कामना करने वालों के साथ व्यवहार करें (तथा तेषु वर्तेथाः) वैसा ही, उन विवेकशील विद्वानों जैसा ही (वर्तेथाः) व्यवहार किया करें।

(अथाभ्याख्यातेषु) इसके अतिरिक्त भी यदि तुम्हें संदिग्ध आचरण वाले दूषित व्यक्तियों के साथ व्यवहार करने या न करने की आशंका उत्पन्न हो तो उस स्थिति में (ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः युक्ता आयुक्ताः अलूक्षा धर्मकामाः स्युः) वहाँ जो भी विद्वान् विचारशील, शास्त्रानुकूल कार्यों में लगे हुए,

कर्तव्याकर्तव्य के विषय में स्वतन्त्र निर्णय लेने वालों क्रोध-रहित, शान्त स्वभाव वाले और धर्म की कामना करने वालों हों, (यथा ते तेषु वर्तेरन्) जैसा वे श्रेष्ठ पुरुष उन संदिग्ध आचरण वालों के साथ व्यवहार करें (तथा तेषु वर्तेथाः) वैसा ही तुम भी उनके साथ व्यवहार करना।

(एष आदेशः) यही आदेश है, (एष उपदेशः) यही उपदेश है। (एषा वेदोपनिषद्) यही वेदों का सार एवं रहस्य है। (एवमुपासितव्यम्, एवमु चैतदुपास्यम्) इसी प्रकार उपर्युक्त आदेशों एवं उपदेशों के अनुसार ही सब कार्य करने चाहिए, और निश्चित रूप से ऐसा ही आचरण एवं व्यवहार करना चाहिए।

7. ऐतरेयोपनिषद् (I-1; V-1)

[यह उपनिषद् ऋग्वेद-संहिता से संबद्ध है। इसका मुख्य विषय आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन करना है। इसमें तीन अध्याय हैं तथा सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्यात्मक है। प्रस्तुत वाक्यों में आत्मा के स्वरूप का वर्णन है।]

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।

नान्यत् किञ्चन मिषत्।

स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥1॥

स इमाँल्लोकानसृजत्॥

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः

स आत्मा येन वा पश्यति येन वा

शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति

येन वा वाचं व्याकरोति येन

वा स्वादु चास्वादु च विजानाति ॥2॥

1. (आत्मा ता इदम् एक एव अग्रे आसीत्) इस संसार में सर्वप्रथम तत्व के रूप में एकमात्र आत्मा ही थी। (न अत्यत् किञ्चन मिषत्) आँखें झपकाने वाला या ऐसा कोई दूसरा तत्व नहीं था। (स ईक्षत) उसने विचार किया कि

(लोकान् नुसृजै इति) मैं लोकों की सृष्टि करूँ (स इमान् लोकान् असृजत) उसने इन सभी लोकों की सृष्टि की।

2. (कोऽयमात्मा इति) यह आत्मा कौन है (वयम् उपास्महे) जिसकी उपासना हम लोग करते हैं? (कतरः स आत्मा) निरुपाधिक तथा सोपाधिक इन दोनों रूपों में आत्मा किस रूप का है। (येन वा रूपं प्रश्यति) क्या वह आत्मा है जिससे मनुष्य रूप का दर्शन करता है। (येन वा शब्दं शृणोति) अथवा जिसके द्वारा वह शब्द का श्रवण करता है। (येन वा गन्धात् आजिध्रति) अथवा जिसके द्वारा वह गन्धों का ग्रहण करता है? (येन वा वाचं व्याकरोति) अथवा जिसकी सहायता से वह वाणी का शाब्दिक विश्लेषण करता है? (येन वा स्वादु च अस्वादु च विजानाति) अथवा जिसके माध्यम से मनुष्य स्वादिष्ट और अस्वादिष्ट का अन्तर करता है। (विविध इन्द्रियों के विषयों का ग्रहण चैतन्यशक्ति अर्थात् आत्मा के कारण संभव है।)

8. छान्दोग्योपनिषद्

(III, xii-1, III, xiv-1, VI, i- 4, VII - 23,24)

यह उपनिषद् सामवेद से सम्बद्ध है। यह पूर्णतः गद्य में है। गूढ़ दार्शनिक रहस्यों को इसमें आख्यानों के द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसमें आठ अध्याय हैं जिन्हें प्रपाठक भी कहते हैं। इनमें दर्शन-विषयक विविध विचारों को अभिव्यक्त किया गया है। समस्त जगत् को ब्रह्मरूप तथा “भूमा” को सुख-स्वरूप बतलाकर उच्च दार्शनिक भावना प्रस्तुत वाक्यों में बतलायी गयी है।

गायत्री वा इदं सर्वं भूत यदिदं किञ्च वाग्वै

गायत्री वाग्वा इदं सर्वं भूमं गायति च त्रायते च ॥1॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत॥

अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरास्मिँ

ल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति

स क्रतुं कुर्वीत ॥2॥

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन
 सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्
 वाचारम्भणं विकारो नामधेयं

मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥3॥

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति
 भूमैव सुखं भूमा वेव विजिज्ञासितव्य
 इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥4॥

.... यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्॥

1. (गायत्री वा इदं सर्वं यदिदं किञ्च) जो कुछ भी यह दृश्य जगत् सभी पदार्थ के रूप में है वह स्तुतिकर्ता की रक्षा करने वाली ब्रह्मशक्ति ही है। (वाक् वै गायत्री) ब्रह्म की गायत्री - शक्ति वाणी ही है। (वाक् वै इदं सर्वं भूतम्) सभी पदार्थों के समूह के रूप में अवस्थित यह जगत् भी तो वाक् रूप ही है। इसका अर्थ है - (गायति च त्रायते च) जो गान तथा त्राण क्रियाओं से सम्बद्ध हो अर्थात् वाक्-रूप ब्रह्म गान में प्रयुक्त होता है तथा समस्त जगत् की रक्षा करता है। (इसीलिए गायत्री ब्रह्म है।)
2. (ब्रह्म की उपासना से सम्बद्ध शाण्डिन्य-विद्या का उपदेश किया गया है कि (इदं सर्वं खलु ब्रह्म) यह समस्त जगत् ब्रह्म ही है, (तव जलान् इति) वह जन्मदाता, नाशक तथा पालक है इसलिए (शान्तः उपासीत) शान्तियुक्त होकर उसकी उपासना करनी चाहिए। (अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः) निश्चित रूप से परमात्मा कर्म, यज्ञ या उपासना के रूप में है। (अस्तित् लोके पुरुषः यथाक्रतुः भवति) इस लोक में प्राणी भी अपने कर्म के अनुसार ही होता है। तथा (इतः प्रेत्य भवति) उसी प्रकार यहाँ से जाने पर अर्थात् मरने पर भी होता है। (सः क्रतुं कुर्वीत) इसलिए वह कर्मरूप परमात्मा को सन्तुष्ट करें।
3. (आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को ब्रह्म की व्यापकता का उपदेश देते हुए दृष्टान्त दिया) (सोम्य) हे बालक श्वेतकेतु! (यथा एकेन मृत्पिण्डेन) जिस प्रकार मिट्टी के एक पिण्ड से (सर्वं मृन्मयं विज्ञातं

स्यात्) मिट्टी से बने हुए घट आदि सभी विकारों का ज्ञान हो जाता है कि (चारारम्भणं विकारः) घटादि नामों के रूप में होने वाला विकार तो केवल वाणी के द्वारा प्रवृत्त होता है, वाग्विलास-मात्र है, (नामधेयम्) वह तो नाममात्र की चीज़ है, सत्य नहीं, (मृत्तिका इत्येव सत्यम्) मिट्टी के रूप में स्थित मूल पदार्थ ही सत्य है। उसी प्रकार ब्रह्म ही सत्य है, संसार आदिनाम तो व्यवहार-मात्र के लिए है।

4. (यः वै भूमा तत्सुखम्) जो प्रचुर अर्थात् निरविशय होता है, वही सुख सुख है। (नाल्पे सुखमस्ति) जिससे बढ़कर भी कोई चीज़ हो सकती है, वह सुख नहीं है। (भूमा एव सुखम्) प्राचुर्य या निरतिशय ही सुख है। इसलिए (भूमा तु एव विजिज्ञासितव्यः) निरतिशय को ही जानने की इच्छा करनी चाहिए- वह निरतिशय ब्रह्म या परमात्मा है, (इति भूमानं भागवः विजिज्ञास इति) इसलिए हे भगवन्! मैं उस निरतिशय परमात्मा को जानने की इच्छा करता हूँ। (यो वै भूमा तदमृतम्) जो निरतिशय तत्त्व है, वही अमर है, (अथ) और (यद् अल्पं तत् मर्त्यम्) जो अल्प अर्थात् सतिशय है वह नश्वर है।

1. “जलान्” में तीन क्रियाएँ हैं - जन (जन्म), ली (लय) नाश तथा अन् (साँस लेना)। ज+ल+अन् =जलान्। इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और विनाश इन तीनों में ब्रह्म का संबंध है। 9

9. बृहदारण्यकोपनिषद् (II, iv-5, II, V-1)

[यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध है और शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग है। इसमें ब्रह्मविद्या का अत्यन्त विस्तार से वर्णन है और आकार में भी यह बृहद् अर्थात् विशाल है। इसका अध्ययनाध्यापन अरण्य अर्थात् वन में हुआ। इसी कारण से इसका नाम बृहदारण्यक पड़ा।]

बृहदारण्यक उपनिषद् से उद्धृत प्रस्तुत अंश में याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी के रोचक संवाद द्वारा उस मनोवैज्ञानिक तथ्य को समझाया गया है कि संसार

में प्रत्येक व्यक्ति को कोई वस्तु अथवा प्राणी किसी अन्य व्यक्ति के लिए नहीं, - अपितु स्वयं अपनी अन्तरात्मा के लिए ही प्रिय होते हैं। अतः आत्मा का ही श्रवण, दर्शन एवं मनन करना चाहिए। यहाँ यह भी बताया गया है कि पृथ्वी समस्त प्राणियों के लिए मधुर एवं प्रिय है तथा पृथ्वी के लिए सब प्राणी पुत्रवत् मधुर एवं प्रिय हैं। अन्त में यह भी कहा है कि समस्त पृथ्वी पर व्याप्त अमृतमय और चैतन्यरूप विराट् पुरुष अर्थात् परमात्मा तथा शरीर में विद्यमान चेतन पुरुष अर्थात् जीवात्मा दोनों एक ही हैं। आत्मा वस्तुतः ब्रह्मस्वरूप ही है।

न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया
 भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति।
 न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि
 भवन्त्यात्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति।
 न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं
 भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं भवति।
 आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
 निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा
 अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ॥१॥

इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मध्वस्यै
 पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु। यश्चाय
 मस्यां पृथिव्यां तेजोमयोऽमृतमयः
 पुरुषो यश्चायमध्यात्मं शारीरस्तेजो

1. ऋषि याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को आत्मतत्त्व का उपदेश देते हुए कहते हैं- (न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रियाः भवन्ति, आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रियाः भवन्ति) है मैत्रेयी! किसी भी व्यक्ति को

देवताओं के प्रयोजन के लिए देवता प्रिय नहीं होते अपितु अपनी आत्मा के प्रयोजन के लिए अर्थात् अपने स्वयं के स्वार्थसाधन के लिए ही देवता प्रिय होते हैं। (न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रिया भवन्ति, आत्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति) हे मैत्रेयी! प्राणियों के प्रयोजन अथवा हित-साधन के लिए सब प्राणी प्रिय होते हैं। (न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति) हे मैत्रेयी! समस्त चराचर जगत् भी जगत् के लिए नहीं, अपितु आत्मा अर्थात् स्वयं अपने लिए ही प्रिय होता है। अतः (आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः) हे मैत्रेयी! आत्मा अथवा अपने स्वरूप का ही दर्शन करना चाहिए, आचार्यों के मुख से उसके विषय में ही सुनना चाहिए, उस आत्मस्वरूप का ही मनन एवं उस का ही निश्चित रूप से ध्यान करना चाहिए। (मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं एवं सर्वं विदितम्) है मैत्रेयी! आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं उसके विशेषज्ञान द्वारा इस समस्त चराचर जगत् को ज्ञान हो जाता है।

2. (इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मधु) यह पृथिवी समस्त प्राणियों के लिए मधुर एवं प्रिय है। (अस्यै पृथिव्यै - सर्वाणि भूतानि मधु) इस पृथिवी के लिए समस्त प्राणी पुत्रवत् मधुर एवं प्रिय हैं अर्थात् सारा विश्व माधुर्य से परिपूर्ण है। (यश्चास्यां पृथिव्यां तेजोमयः अमृतमयः पुरुषः) और जो इस पृथिवी में चैतन्य एवं प्रकाशस्वरूप तथा अमृतरूप अर्थात् कभी नष्ट न होने वाला पुरुष अर्थात् परमात्मा है। (पश्चायमध्यात्मं शारीरस्तेजोमयोऽ अमृतमयः पुरुष) और जो शरीर में विद्यमान आत्मा अर्थात् अपने को देहाभिमानी कहने वाला चेतन तथा कभी न मरने वाला पुरुष है- (अयमेव सः) यह तथा वह अर्थात् विश्वात्मा पुरुष और देहात्मा पुरुष, दोनों एक ही हैं। वस्तुतः आत्मा और परमात्मा दोनों एकरूप

ही हैं और दोनों एक ही हैं। वस्तुतः आत्मा और परमात्मा दोनों एकरूप ही हैं और दोनों ही “मधु” अर्थात् माधुर्यमय या आनन्दमय है। (यः अयमात्मा इदम् अमृतम्) यह जो जीवात्मा है, यह भी अमृतरूप अविनाशी परमात्मा अथवा ब्रह्म ही है। (इदं ब्रह्म इदं सर्वम्) यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अथवा चराचर जगत् सब कुछ वास्तव में ब्रह्म ही है।

10. कैवल्योपनिषद् (10. 22)

[यह उपनिषद् अपनी सरल शैली के कारण बहुत लोकप्रिय है। कुल 28 मंत्रों में मोक्ष की अवस्था का बहुत सुन्दर वर्णन इसमें मिलता है।]

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

संपश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना।।।।।

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो

वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।

न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो

न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥2॥

1. (आत्मानं) आत्मा को (सर्वभूतस्थ) सभी प्राणियों में अवस्थित तथा (सर्वभूतानि) सभी प्राणियों को (आत्मनि च) आत्मा में स्थित (संपश्यन्) सम्यक् रूप से देखकर, समझकर (परमं ब्रह्म) सर्वोच्च ब्रह्म की स्थिति को साधक (याति) प्राप्त करता है, (अन्येन हेतुना न) दूसरे कारण या उपाय से नहीं।
2. (मोक्ष या कैवल्य पा लेने पर साधक अपनी स्थिति का वर्णन करता है कि वह ब्रह्ममय हो गया है-) (अनेकैः वेदैः) अनेक वेदों के द्वारा (अहमेव वेद्यः) मुझे ही जाना जाता है, (अहंच)

और मैं (वेदान्तकृत्) वेदान्त का निर्माता तथा (वेदवित् एव) वेदों का ज्ञाता भी हूँ। (मम) मेरा (पुण्यपापे न) पुण्य या पापकर्म से कुछ लेना-देना नहीं, मैं इनसे ऊपर हो चुका हूँ, (नाशः न अस्ति) मेरा नाश भी नहीं हो सकता - मैं अमर हूँ, (न जन्म) मेरा जन्म नहीं होता और न (देहेन्द्रियबुद्धिः अस्ति) शरीर और इन्द्रियों का ही बोध है- मैं इन समस्त भौतिक पदार्थों से ऊपर ब्रह्मरूप बन गया हूँ।

11. श्वेताश्वतरोपनिषद् (I-15,III-8, IV-5, VI-11, 18)

[यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद को श्वेताश्वतर-शाखा से सम्बद्ध है। इसमें 6 अध्याय हैं। इसमें आत्मा को जगत का आधार बतलाया गया है। संसार में व्याप्त ब्रह्म का, प्रकृति-पुरुष का तथा मोक्ष का वर्णन इन मन्त्रों में अत्यन्त रोचक शैली में किया गया है। सुबोध उपमाओं के द्वारा गूढ़ विषय को समझाने के कारण इनका बहुत महत्त्व है।]

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोत्रः स्वरणीषु चाग्निः।

एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥1॥

वेदाहमेतं पुरुषं महानतमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥2॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां

बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते

जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥3॥

एको देवः सर्वभूताधिवासः

साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥4॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं

यो वै वदाँश्चप्रहिणोति तस्मै।

तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं

मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥५॥

1. (तिलेषु तैलं) तिल के दानों में छिपे तेल के समान, (दधिनि सर्पिः इव) दही में छिपे धृत के समान, (स्रोतःसु आपः) नदी के स्रोतों में छिपे जल के समान (अरणीषु च अग्निः) और अरणियों में छिपे अग्नि के समान (एवम् असौ आत्मा)- इसी प्रकार वह आत्मा (आत्मनि गृह्यते) अपने आत्मा में देखा जाता है। (किन्तु इसे वही देख पाता है) (यः) जो साधक (एवं) इस आत्मा को (सत्येन तपसा) सत्य और तपस्या के उपायों से (अनुपश्यति) देखता है।
2. (अहम्) मैं (एतं महान्तं पुरुषं) इस महान् पुरुष के रूप में स्थित परमात्मा को (तमसः परस्तात्) अज्ञान-रूप अन्धकार के पार (आदित्यवर्णं) सूर्य के प्रकाश के रूप में (वेद) जानता हूँ। साधक (तमेव विदित्वा) उसी परमात्मा को जानकर (मृत्युम् अति एति) मृत्यु के बंधन को पार कर जाता है, अमर हो जाता है। (अयनाय) मोक्ष प्राप्त करने के लिए (अन्यः पन्थाः न विद्यते) दूसरा मार्ग नहीं होता।
3. (लोहित-शुक्ल-कृष्णां) लाल, उजले और काले वर्ण वाली, (बह्वीः सरूपाः प्रजाः सृजमानाम्) बहुत सी समान रूप वाली सन्तानों को पदार्थों को उत्पन्न करने वाली (एकाम् अजाम्) एक अजन्मा प्रकृति का (जुषमाणः) सेवन करते हुए (एकः अजः अनुशेते) बन्धन में पड़ा हुआ एक अजन्मा पुरुष तो उसके पास ही बना रहता है किन्तु (अन्यः अजः) दूसरा अजन्मा पुरुष (मुक्तभोगाम् एनां जहाति) उस प्रकृति के भोगों को ग्रहण करके छोड़ देता है- मुक्त हो जाता है।
4. (परमात्मा का वर्णन) (एको देवः) वह एकमात्र प्रकाश-रूप परमात्मा (सर्वभूतेषु गूढं) सभी पदार्थों में छिपा हुआ है। वह

(सर्वव्यापी) सभी पदार्थों को व्याप्त करने वाला, (सर्वभूतान्तरात्मा) सभी पदार्थों की अन्तरात्मा अर्थात् स्वरूप, (कर्माध्यक्षः) सभी प्राणियों के नानाप्रकार के कर्मों का अधिष्ठाता या प्रेरक, (सर्वभूताधिवासः) सभी पदार्थों में निवास करने वाला, (साक्षी) सभी पदार्थों को देखने वाला, (चेता) ज्ञान देने वाला, (केवलः) उपाधिरहित (निर्गुणः च) और त्रिगुणातीत है- सत्त्व, रज, तम इन तीन गुणों से रहित है।

5. (यः) जो परमात्मा (पूर्व ब्रह्माणं) आदिस्रष्टा ब्रह्मा को भी (विदधाति) निर्मित करता है, (यः च वै) और जो (तस्मै) उस ब्रह्मा को (वेदान् प्रहिणोति) सभी वेद प्रदान करता है। (तं ह आत्मबुद्धिप्रकाशं) अपनी बुद्धि से प्रकाश करने वाले उस (देवं) देवता की (शरणम्) शरण में (अहं मुमुक्षुः वै) मैं मोक्ष का इच्छुक साधक (प्रपद्ये) पहुँच रहा हूँ।

तृतीय खण्ड

वैदिक आख्यान

1. सरमा और पणि (ऋग्वेद)

एक बार पणि नामक असुर आर्यों की गायें चुरा ले गये थे। वे रसा नदी के पार रहते थे। उन्होंने गायों को पर्वतों में छिपा रखा था। इन्द्र ने सरमा नामक अपनी राजदूती को उन गायों की खोज करने के लिए पणियों के पास भेज दिया। वहीं जब सरमा पहुँची तब पणियों ने उससे पूछा—“सरमे! तुम इधर क्यों आई हो?” सरमा ने उत्तर दिया “मैं इन्द्र की दूती हूँ तथा छिपे हुए—गो-धन की खोज करने के लिए आई हूँ।” पणियों ने पूछा—“वह इन्द्र कैसा है जिसकी तुम दूती बन कर आई हो? उसे हमसे मित्रता करनी चाहिए।” सरमा ने कहा—“इन्द्र सबको परास्त कर सकता है। उसे कोई जीत नहीं सकता। रसा नदी को पार करना उसके लिए बड़ी बात नहीं। वह तुम्हें नष्ट कर सकता है।”

पणियों ने कहा—“सूरमे! तुम जिन गायों के विषय में कहती हो, उन्हें युद्ध के बिना भला कौन छोड़ देगा? हमारे शस्त्र भी तीखे हैं।” सरमा बोली—“तुम्हारी इन बातों से सेना भड़क उठेगी।” पणियों ने बतलाया—“सरमे! यह सारा धन पत्थर के दुर्ग में है और उस पर सैनिकों का पहरा है।” सरमा ने पुनः कहा “जब अंगिरस आएँगे और गायों को छीन कर ले जाएँगे, तब तुम्हारा यह हठ नहीं चलेगा।” इस पर पणियों ने प्रस्ताव रखा—“तुम हमारी बहन बन कर यहीं रह जाओ। उन गायों का बँटवारा हम आपस में कर लेंगे।” इस पर सरमा ने क्रुद्ध होकर कहा—“पणियों! मैं न तो बहन का नाता जानती हूँ, न भाई का। इन संबंधों को तो इन्द्र और भंयकर अंगिरस अच्छी तरह जानते हैं। वे शीघ्र ही तुम्हारे शिविर पर आक्रमण करेंगे। अतः दूर भाग जाओ। छिपाई गई जिन गायों का पता लगा है उन्हें प्राकृतिक नियम के अनुसार मुक्ति मिलनी चाहिए।”

इस प्रकार सरमा ने पणियों का प्रस्ताव ठुकरा दिया और लौट कर सब समाचार इन्द्र को सुनाया। इन्द्र ने वहाँ जाकर पणियों को हराया और गायें

पुनः प्राप्त कर लीं।

शिक्षा— ऋग्वेद में अवस्थित इस संवाद से वैदिक-कालीन राजनीतिक सूझ-बूझ का पता चलता है। यहाँ ईमानदार राजदूती का चरित्र चित्रण सरमा के रूप में दिखाई देता है। ईमानदार दूत कभी लोभ के वश में नहीं होते।

2. विश्वामित्र और नदी (ऋग्वेद)

विश्वामित्र पैजवन एक ऋषि थे। वे सुदास नामक राजा के पुरोहित थे। एक बार उन्हें राजा से किसी यज्ञ में बहुत धन मिला। सारा धन लेकर विश्वामित्र विपाट् (व्यास) तथा शुतुद्री (सतलज) नदियों के संगम पर आए। नदी पार करने के लिए विश्वामित्र ने नदी की स्तुति की। नदी ने कहा— “इस प्रदेश को हमें हरा-भरा करना है। देव-निर्मित समुद्र की ओर हम जा रही हैं।” विश्वामित्र ने कहा— “नदियों! सोमयज्ञ करने के लिए मुझे उस पार जाना है। क्षण भर रुक जाओ।” नदियों ने उत्तर दिया— “बज्रबाहु इन्द्र ने हमें खोदा है। उसी ने नदियों को प्रवाहित होने से रोकने वाले वृत्र का संहार किया है। उसी की आज्ञा से हम इतने विस्तार से बह रही हैं।”

विश्वामित्र ने उन्हें बताया कि वे रथ आदि लेकर आए हैं। वे उस पार जा सकें इसलिए नदियों को अपना पानी कम कर लेना चाहिए। नदियों ने कहा— “हे प्रशिक्षक! हम तुम्हारी बात मान लेती हैं क्योंकि रथ में बैठकर तुम दूर से आए हो। माँ अपने बच्चे के सामने या लड़की अपने पिता के सामने जिस प्रकार झुक जाती है, उसी प्रकार हम यहाँ पर झुक रही हैं।— इस पर विश्वामित्र ने नदियों को यह आशीर्वाद दिया— “तुम्हारा प्रवाह चलता रहे, नहरों को पानी मिलता रहे। तुम्हारी समृद्धि हो।” वे उस पार चले गए।

शिक्षा वैदिक काल में ऋषियों का इतना प्रभाव था कि यज्ञादि

परोपकारी कार्यों में सहयोग करने के लिए उनके निवेदन पर मार्ग में आने वाली जड़ देवता नदियाँ भी अपना प्रवाह कम करके मार्ग को सुगम बना देती थीं। इस कथा से यह भी विदित होता है कि प्राचीनकाल में भारत में नदियाँ सिंचाई का प्रमुख साधन थीं और उनका जनकल्याण के लिए उपयोग करके देश को अन्न एवं धन से परिपूर्ण करने का प्रयास किया जाता था।

3. वामन का पराक्रम (शतपथ ब्राह्मण)

देवता तथा असुर दोनों प्रजापति (ब्रह्मा) के पुत्र थे। इसीलिए उन दोनों में यह स्पर्धा थी कि यह पृथ्वी हमारी है। परिणामस्वरूप देवता और असुर दोनों पृथ्वी पर अधिकार के लिए झगड़ते रहते थे। देवताओं की अपेक्षा असुर अधिक बलवान थे। असुरों ने पृथ्वी पर अधिकार कर लिया। इससे देवगण चिंतित हुए।

देवता भगवान विष्णु के पास गए। उन्होंने विष्णु से कहा— “इन असुरों ने समस्त पृथ्वी पर अधिकार कर लिया है। अब हम कहाँ रहेंगे?” देवताओं की बात सुन कर भगवान विष्णु ने एक उपाय सोचा। तदनुसार उन्होंने स्वयं वामन का रूप धारण किया। इस प्रकार वे बौने हो गये। देवताओं की ओर से वामन (बौना) रूप धारण करके विष्णु असुरों के पास गए। उन्होंने असुरों से कहा— “भाई! अब हम कहाँ रहेंगे? हमें भी रहने के लिए पृथ्वी का कुछ भाग दीजिए।

असुरों ने सोचा कि ये तो वामन हैं, अपने लिए कितनी भूमि ले सकते हैं? अतएव उन्होंने चतुराई से कहा— “यह वामन जितनी भूमि पर कदम रखेगा, उतनी भूमि हम देवताओं को देंगे।”

इस पर भगवान विष्णु ने एक कदम पृथ्वी पर अग्निरूप में रखा, दूसरा कदम वायुरूप में आकाश में रखा तथा तीसरा कदम आदित्य के रूप में

स्वर्ग में रखा। इस प्रकार देवताओं के लिए वामन-रूपी विष्णु ने तीन कदमों में तीनों लोकों को नाप लिया। इससे देवताओं का तीनों लोकों पर एक साथ अधिकार हो गया। विष्णु के इस दिव्य पराक्रम से असुर हतप्रभ हो गए।

आगे चलकर भगवान विष्णु ने पृथ्वी को उपजाऊ बनाया जिससे कृषि-कर्म का आविष्कार हुआ और अन्न उत्पन्न होने लगा। इस प्रकार विष्णु का पराक्रम मानव-मात्र के लिए उपकारक सिद्ध हुआ।

शिक्षा- देवताओं एवं दिव्य गुण से युक्त व्यक्तियों के हित-साधन के लिये भगवान भी स्वयं छोटे-से छोटा रूप धारण कर लेते हैं।

4. पृथ्वी और देवयजन शतपथ ब्राह्मण

देवताओं और असुरों में बहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा। कभी-कभी देवगण असुरों से पराजित हो जाते थे। अन्न आदि पृथ्वी की समस्त सम्पदा पर असुरों का अधिकार होने से देवगण दीन-हीन हो गए।

देवता एक सुरक्षित भूमि (देवयजन) में जाकर यज्ञ करने लगे। असुरों को यह रहस्य मालूम हो गया। वे इस देवयजन भूमि को भी जीतने की योजना बनाने लगे। इससे देवता चिंतित हुए। उन्होंने सोचा कि इस देवयजन की सुरक्षा कैसे की जाए? उन्होंने देवयजन को चंद्रमा में स्थापित कर दिया। इससे असुरों की कुचेष्टा निष्फल हो गई। देवता चंद्रमा पर स्थापित देवयजन नामक भूभाग पर यज्ञ करने लगे। देवताओं को यज्ञ के कारण शक्ति प्राप्त हुई। उन्होंने पृथ्वी पर अपना खोया हुआ अधिकार पुनः प्राप्त कर लिया।

किन्तु यज्ञ-भूमि चंद्रमा पर रह गई। पृथ्वी पर यज्ञ करने में देवताओं को कठिनाई होने लगी। तब विद्वान देवयजन के प्रतीक के रूप में पृथ्वी पर वेदी बनाकर यज्ञ-कर्म करने लगे। पृथ्वी का भाग चन्द्रमा पर रह गया।

पृथ्वी पर यज्ञ उसके प्रतीक के आधार पर होने लगा।

शिक्षा- यज्ञ द्वारा खोई हुई प्रतिष्ठा तथा सोई हुई शक्ति को प्राप्त करके शत्रुओं और पापियों पर विजय पाई जा सकती है।

5. मनु तथा मत्स्य

(शतपथ ब्राह्मण)

आदिपुरुष मनु ने एक बार प्रातः काल नदी में अर्घ्य देने के लिए हाथ में पानी लिया तो पानी के साथ एक छोटी-सी मछली भी आ गई। तुरंत मछली ने मनु महाराज से कहा— “आप मेरी रक्षा कीजिए।” मनु ने कहा— ठीक है। किंतु तुम्हारी रक्षा कैसे की जाए? मछली ने उत्तर दिया— “पानी से भरे घड़े में मुझे रख दीजिए। बड़ी होने पर मुझे तालाब में डाल दीजिए और अधिक बड़ी होने पर समुद्र में।” अभी आप मेरी रक्षा करेंगे तो समय आने पर मैं भी आपकी रक्षा करूँगी। अमुक वर्ष में प्रलय होने पर समुद्र के किनारे नौका में आप मेरी प्रतीक्षा कीजिए। तब मेरे सींगों में आप अपनी नौका बांध लेंगे।”

प्रलय होने पर मनु ने वैसा ही किया और नौका में वे बैठ गए। तब संसार के सारे प्राणी जल-प्रलय के कारण बह गए किंतु मत्स्य ने उस नौका को हिमालय की ओर ले जाकर जल-प्रलय से मनु को बचा लिया। अब संसार में केवल मनु ही बच गए थे। मनु की आगे संतानें हुईं और हम सब ‘मानव’ कहलाने लगे।

शिक्षा- यदि छोटे से छोटे प्राणी की भी दयाभाव से सेवा एवं सुरक्षा की जाए तो समय आने पर वह हमारी रक्षा कर सकता है।

6. इन्द्र और वृत्र शतपथ ब्राह्मण

वृत्र नाम का एक बड़ा भयंकर दैत्य था। वह आकाश में निवास करता था। वृत्र ने आकाश में रहते हुए सूर्य की किरणों को पृथ्वी पर आने से रोक लिया और वर्षा की धाराओं को भी बंद कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वी पर सूर्य का प्रकाश न आने से सर्वत्र अंधकार छा गया और वर्षा के अभाव में अकाल पड़ने लगा। मर्त्य-लोक की यह दुर्दशा देखकर देवताओं ने देवराज इन्द्र की उपासना की और उनसे वृत्र का वध करने का आग्रह किया। इन्द्र ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर वृत्र से युद्ध किया। युद्ध के समय वृत्र ने अपनी शक्ति से समस्त आकाश को गहन अंधकार से छा दिया और अपने रूप को भयंकर बना लिया।

तब देवगण इन्द्र ने शक्ति एवं उत्साहवर्धक सोमरस का पान किया और अपने अमोघ अस्त्र बज्र को हाथ में लेकर वृत्र का वध कर दिया। वृत्र का वध होने पर सूर्य की किरणें पृथ्वी पर आने लगीं। पृथ्वी प्रकाश से जगमगाने लगी। साथ ही वृत्र द्वारा रोकी गई जल की धाराएँ भी पृथ्वी पर बरसने लगीं और सारा मर्त्य-लोक धन-धान्य से परिपूर्ण हो गया।

शिक्षा— जो स्वार्थ एवं रागद्वेष की भावना से प्रेरित होकर लोक की समृद्धि एवं प्रकाश के मार्गों को रोक देते हैं वे वृत्र आदि असुरों के समान हैं। इसके फलस्वरूप वे इन्द्र जैसे लोकमंगलकारी तथा शक्तिशाली दिव्य जनों के हाथों से मारे जाते हैं।

7. याज्ञवल्क्य और गार्गी (शतपथ ब्राह्मण)

प्राचीन समय में एक बार जनक की राजसभा में देश-विदेश के विद्वान् सम्मिलित हुए। इन ब्रह्मज्ञानियों की सभा में कहोल, कौषितिकेय, भुज्यु, जारत्कारव, चक्रायण तथा उद्दालक, आरुषि आदि उपस्थित थे। इनमें गार्गी नाम की वचक्नु की ब्रह्मवादिनी कन्या भी उपस्थित थी।

महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्रह्म-ज्ञान के विषय में उपर्युक्त ऋषियों ने कई प्रश्न पूछे। इसी प्रसंग से उनसे गार्गी ने भी भरी सभा में अनेक प्रश्न किए। याज्ञवल्क्य उनका उत्तर देते गए।

गार्गी ने पूछा- यह तत्व जल में ओत-प्रोत है, वह जल किसमें ओत प्रोत है?

याज्ञवल्क्य- वायु में।

गार्गी- वायु किसमें स्थित है?

याज्ञवल्क्य- अन्तरिक्ष लोक में।

गार्गी- अन्तरिक्ष किसमें?

याज्ञवल्क्य- गन्धर्व लोक में।

गार्गी- गन्धर्व लोक किसमें?

याज्ञवल्क्य- आदित्य लोक में।

इस प्रकार प्रत्येक प्रश्न के उत्तर, नक्षत्र-लोक, देवलोक, इन्द्रलोक, प्रजापति-लोक और ब्रह्मलोक में ओत-प्रोत होने की बात कही गई।

इसके बाद भी जब गार्गी ने पूछा कि ब्रह्मलोक किसमें ओत-प्रोत है, तब याज्ञवल्क्य से नहीं रहा गया। उन्होंने तत्काल कहा-गार्गी! अब ज़्यादा प्रश्न न करो। ऐसा न हो कि प्रश्नाधिक्य से तुम्हारा मस्तक गिर जाए। अति-प्रश्न से मर्यादा भंग होगी। इस पर गार्गी शान्त हो गई।

इसी बीच याज्ञवल्क्य से ब्रह्मज्ञानी उद्दालक ने प्रश्न पूछे। उद्दालक के संतुष्ट होने पर गार्गी को पुनः प्रश्न पूछने की इच्छा हुई। गार्गी ने ब्रह्मवादी ऋषियों से कहा - 'मेरे दोनों प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर यदि ये दे देंगे, तो इन्हें कोई जीत नहीं सकता।' ऋषियों से अनुमति प्राप्त होने पर गार्गी ने कहा कि जिस प्रकार योद्धा अपने शत्रु को हराने के लिए दो बाणों को धनुष पर चढ़ाता है वैसे मैं भी याज्ञवल्क्य को परास्त करने के लिए दो प्रश्न कर रही हूँ। पहला प्रश्न यह है कि स्वर्ग के नीचे और पृथ्वी के ऊपर जो अन्तरिक्ष है और जो भूत, वर्तमान, और भविष्यत् काल के रूप में कहा जाता है वह किसमें ओत-प्रोत है?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- आकाश में।

गार्गी ने धन्यवाद देते हुए पुनः दूसरा प्रश्न पूछा-आकाश किस में ओत-प्रोत है?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया-हे गार्गी। जिसका वर्णन ब्रह्मवादी लोग स्थूल तथा सूक्ष्म आदि रूप में करते हैं, जो न खाता है, न किसी से खाया जाता है, आकाश उसी में ओत-प्रोत है। इस प्रकार अधिक विस्तार के साथ अक्षर-तत्त्व का विवेचन करते हुए उन्होंने कहा कि इस अक्षर को जानने वाला ब्रह्मज्ञानी होता है।

अन्त में गार्गी ने सभी ऋषियों से कहा-

महर्षिगण! याज्ञवल्क्य सबसे श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी हैं। उन्हें कोई जीत नहीं सकता है। इतना कह कर वह सन्तुष्ट हो बैठ गई।

शिक्षा- प्राचीन-काल में भारत में जहाँ पुरुष विद्वान् एवं ब्रह्मज्ञानी होते थे वहाँ स्त्रियाँ भी विदुषी एवं सुयोग्य होती थीं। स्त्रियों की विद्वत्ता का लोहा राजा एवं ऋषिगण तक मानते थे। इस कथा से यह भी विदित होता है कि प्राचीन भारत में राजा विद्या-प्रेमी होते थे और वे ब्रह्म-चर्चा के लिए विद्वानों की सभा बुलाते थे एवं उनका सम्मान करते थे।

8. जनक और याज्ञवल्क्य (शतपथ ब्राह्मण)

एक समय मिथिला के राजा विदेह जनक ने बहुत बड़े यज्ञ का आयोजन किया । उस यज्ञ में कुरु, पंचाल आदि देशों के बड़े-बड़े विद्वानों को आमन्त्रित किया गया। इन विद्वानों की सभा में विदेह जनक ने पूछा कि इन विद्वानों में जो सांगवेद के ज्ञाता और ब्रह्मतेज से पूर्ण हैं, वे इस स्वर्णविभूषित हज़ार गायों को ग्रहण करेंगे। उन विद्वानों में जब कोई भी अपनी ब्रह्मनिष्ठा प्रकट न कर सका, तब याज्ञवल्क्य ने अपने प्रिय शिष्य सामश्रवा से कहा—इन गायों को मेरे घर ले जाओ। गुरु की आज्ञा से सामश्रवा ने उन गायों को याज्ञवल्क्य के घर पहुँचा दिया।

इससे विद्वानों में उत्तेजना फैल गई कि हम लोगों के सामने इसने स्वयं को ब्रह्मज्ञान का अभिमानी प्रकट किया? उसके बाद यजमान जनक के आश्वल नाम के होता (ऋग्वेद के ज्ञाता) ने स्वयं को ब्रह्मज्ञानी मानते हुए और राजा के आश्रित रहने के अभिमान के कारण याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया—हे याज्ञवल्क्य!, हम लोगों के सामने क्या तुम ही ब्रह्मज्ञानी हो? विनम्रता ही ब्रह्मज्ञानी का लक्षण है, वह तुम में नहीं दिखता। इस बात को सुनकर याज्ञवल्क्य ने कहा—मैं ब्रह्मज्ञानियों को नमस्कार करता हूँ। तब आश्वल ने पूछा—आपने ब्रह्मज्ञानियों के लिए लायी गाँ अपने घर क्यों भेज दीं? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि हमें गायों की आवश्यकता थी, इसीलिए घर भेज दिया। याज्ञवल्क्य वहाँ समागत सभी ब्रह्मवेत्ताओं को ब्रह्मज्ञान तथा आत्मविद्या के शास्त्रार्थ में हराकर सर्वसम्मत श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस चरम ज्ञानोत्कर्ष से आकृष्ट होकर मिथिला-नरेश विदेह राजा जनक ने याज्ञवल्क्य महर्षि को राजगुरु बना दिया तथा उनसे आत्मविद्या सीख कर वे स्वयं भी आत्मज्ञानी बन गये।

शिक्षा—विद्या विनय से ही सुशोभित होती है और सच्चा ज्ञान अहंकार को दूर करता है।

9. मैत्रेयी का ब्रह्म-ज्ञान

याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियाँ थीं—एक का नाम था मैत्रेयी तथा दूसरी का कात्यायनी। मैत्रेयी पहली पत्नी थी। वह बड़ी विदुषी तथा ब्रह्मज्ञानी थी। कात्यायनी छोटी पत्नी थी और लोक-व्यवहार में कुशल थी।

याज्ञवल्क्य ने सन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया। सन्यास ग्रहण करने के पूर्व उन्होंने अपनी सम्पत्ति के विभाजन के लिए दोनों पत्नियों से परामर्श किया। मैत्रेयी से उन्होंने पूछा—‘मैंने जो धन से पूर्ण पृथ्वी अर्जित की है उसका भाग तुम्हें देना चाहता हूँ।’

मैत्रेयी ने इस पर पूछा—‘भगवन्, यदि धन से पूर्ण सारी पृथ्वी मुझे मिल जाती है तो क्या मैं सदा के लिए सुखी हो जाऊँगी?’ याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—नहीं।

इस पर मैत्रेयी ने कहा— जिससे मैं देवत्व और अक्षय सुख पा सकूँ, ऐसा उपदेश मुझे दीजिए।

इस प्रसंग में याज्ञवल्क्य ने कहा—इस संसार की सारी वस्तुएँ आत्मा की प्रसन्नता के लिए प्यारी होती हैं। आत्मा ही ब्रह्म है। आत्मज्ञान से स्थायी सुख मिलता है, जिसे ब्रह्मानन्द कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जो भी सुख है वह अनित्य है।

इस प्रकार धन का मोह छोड़ कर याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के साथ तपस्या करने चली गई।

शिक्षा— केवल धन से मनुष्य को वास्तविक आत्मिक शान्ति नहीं मिल सकती। आत्मज्ञान एवं तपस्या द्वारा ही सच्चा सुख प्राप्त होता है। धन धान्य से होने वाला सुख क्षणिक एवं तप से मिलने वाला आनन्द स्थायी एवं अमर होता है। मानव को पत्नी, पुत्र आदि इसलिए प्रिय होते हैं

क्योंकि उनसे उसकी आत्मा को सन्तोष मिलता है। अतः आत्मा के दर्शन एवं ज्ञान का ही यत्न करना श्रेयस्कर है। उपर्युक्त रहस्य को उपनिषद् के युग के पुरुष एवं महिलाएँ दोनों ही भली-भाँति समझते थे और वे भौतिक सम्पत्ति को त्याग कर तपस्या का मार्ग अपनाते थे।

10. देवताओं की शक्ति परीक्षा (कठोपनिषद्)

एक बार देवताओं में महाबली राक्षसों पर विजय प्राप्त करने के कारण अत्यन्त अभिमान आ गया। देवताओं के इस वृथा अभिमान को देखकर भगवान को अत्यन्त कष्ट हुआ। अपने ही द्वारा संरक्षित देवताओं को उचित रास्ते पर लाने के लिए भगवान उनके गर्व को नष्ट करने के लिए यक्ष के रूप में उपस्थित हुए। यक्ष की देदीप्यमान आकृति को देखकर देवताओं को आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसका परिचय पाने के लिए महा प्रलापी अग्निदेव को कहा। अभिमानी अग्निदेव अत्यन्त घमण्ड से यक्ष के पास गए। अग्नि को देखकर यक्ष ने तुरन्त पूछा कि आप कौन हैं? इस प्रश्न के उत्तर में अग्नि ने अपने पराक्रम का वर्णन किया कि मैं किसी भी वस्तु को तुरन्त जला सकता हूँ। इस पर यक्ष ने अग्नि के सामने एक तृण रखा और उसे जलाने के लिए कहा, किन्तु वे तिनके को जला नहीं सके। इस कारण लज्जित होकर वापस चले गए। इस प्रकार वायु आदि देवगण भी अपनी शक्ति दिखाते हुए यक्ष का परिचय प्राप्त करने में असमर्थ रहे।

अन्त में सारे देवताओं ने देवराज इन्द्र से प्रार्थना की, महाराज आप हमारे प्रभु हैं। आप स्वयं जाकर इस महाशक्तिमान यक्ष का परिचय प्राप्त करने का कष्ट करें। देवताओं की प्रार्थना से विवश होकर देवराज इन्द्र जैसे ही उस यक्ष के पास गए। तभी वह अन्तर्धान हो गया और उस स्थान पर देवी हेमवती उमा प्रकट हो गई। इन्द्र ने उन्हें देखकर उनके पास जाकर

निवेदन किया कि हे देवी!, आप सर्वशक्तिमती हैं। कृपया मुझे बताएँ कि यह यक्ष कौन था? इन्द्र के प्रश्न के उत्तर में हेमवती उमा ने कहा— 'देवराज! ये साक्षात् परब्रह्म परमात्मा थे। उन्हीं की शक्ति से सभी क्रियाकलाप होते हैं। जिस वस्तु में इनकी शक्ति अवरूढ़ हो जाती है वह वस्तु निष्क्रिय हो जाती है। आप लोगों ने इन्हीं की कृपा से राक्षसों को जीता था। इस युद्ध में आप सब निमित्तमात्र थे। किन्तु भ्रमवश आप स्वयं को ही सर्वसमर्थ समझने लगे। आप सभी की यह स्थिति देखकर आपके गर्व को चूर करने में निमित्त परमात्मा ने तिनके के उदाहरण के द्वारा आपकी स्थिति को सिद्ध कर दिया।

उन्होंने ही आप लोगों को उपदेश देने के लिए मुझे यहाँ भेजा है। अतः आप लोग व्यर्थ का अभिमान न करें। आप सब अपने-अपने कर्मों को सावधानी से निरन्तर करते रहें। इतना उपदेश देकर उमा हेमवती अदृश्य हो गईं।

इन्द्र भी देवताओं के पास लौट आए और सारी घटनाओं की जानकारी देवगणों को दी। इससे देवताओं को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और देवता कभी भी अभिमान न करने का संकल्प लेकर देवलोक को चले गए।

शिक्षा— अपनी शक्ति एवं विजय पर कभी अभिमान नहीं करना चाहिए। सारी शक्ति परमात्मा की दी हुई है। परमात्मा की कृपा से ही विजय प्राप्त की जाती है। जो अपनी विजय पर मिथ्या अभिमान करते हैं, समय आने पर उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है और उनका अभिमान चूर हो जाता है। सदा परमात्मा की शक्ति में ही विश्वास करना श्रेयस्कर है।

11 नचिकेता की साधना (कठोपनिषद्)

एक समय नचिकेता के पिता उद्दालक ने विश्वजित यज्ञ प्रारम्भ किया। इस यज्ञ में सर्वस्व दान करने का नियम है। किन्तु उद्दालक ने अपने पुत्र

के स्नेह के कारण अच्छी दुधारू गायों का दान नहीं किया। क्योंकि वे दुधारू गाएँ प्रियपुत्र नचिकेता के लिए उपयोगी होंगी। इसलिए उद्दालक बूढ़ी और कम दूध देने वाली गायों का दान करने लगे।

उनका पुत्र नचिकेता वहीं बैठा था। उसने देखा कि उसके पिता अच्छी गायों का दान न देकर बूढ़ी गायों का दान कर रहे हैं। वह सोचने लगा कि मेरे कारण ही पिता जी अच्छी गाएँ नहीं देना चाहते। जो गायें असमर्थ हैं, उन्हें लेकर ब्राह्मणों को क्या लाभ होगा? विश्वजित यज्ञ में तो सब कुछ दान करने का विधान है। तो पिता जी मुझे ही दान क्यों नहीं कर देते। क्योंकि मैं पिता का श्रेष्ठ धन हूँ, मेरे ही कारण पिता को लोभ हुआ है।

नचिकेता ने प्रकट रूप से पिता से कहा - 'पिता जी, मैं भी तो आपका धन हूँ, मुझे भी आप क्यों नहीं दान कर देते'। नचिकेता की इस बात को सुनकर उद्दालक ने कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु नचिकेता बार-बार प्रश्न करता रहा। इस पर पिता ने क्रोधित होकर कह दिया— मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ'।

पिता की बात सुनकर नचिकेता ने सोचा कि यदि मैं उत्तम पुत्र हूँ तो मुझे पिता के वचन का तुरन्त पालन करना चाहिए।

इधर नचिकेता यमलोक जाने की तैयारी करने लगा, उधर उद्दालक के मन में बड़ा पश्चाताप होने लगा। उद्दालक के बहुत समझाने पर भी उनकी बात सत्य करने के लिए नचिकेता यम की पुरी में चला गया।

जिस समय नचिकेता यमपुरी पहुँचा उस समय यमराज राजधानी से बाहर गए हुए थे। नचिकेता ने बिना खाए-पीए तीन दिन का समय बाहर व्यतीत किया। जब यमराज राजधानी लौट आए तब उन्हें यह बात मालूम हुई। उन्होंने सोचा, अतिथि तो साक्षात् अग्निदेव होते हैं, उन्हें प्रसन्न करना चाहिए। अन्यथा मेरा सर्वस्व नष्ट हो जाएगा।

यमराज ने नचिकेता के पास जाकर कहा— आप मेरे घर के द्वार पर निराहार पड़े रहे, इसलिए उसके बदले में मुझसे तीन वर माँग लीजिए।

इस पर नचिकेता ने पहला वर माँगा— ‘मेरे पिता मुझ पर शान्त होकर प्रसन्न हो जाएँ।’ यमराज ने यह बात स्वीकार कर ली। नचिकेता ने दूसरा वर माँगा— उसने अक्षय पद की प्राप्ति के लिए ‘अग्नि विद्या का ज्ञान भी माँगा।’ यमराज ने इसे भी स्वीकार कर लिया। यमराज ने कहा—नचिकेता अब तीसरा वर माँगो।

इसी बीच नचिकेता ने पूछा— हे यमराज! मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व रहता है या नहीं? इस विषय में लोगों को संशय है। अतः इसका भी रहस्य बता कर मुझे कृतार्थ करें।

यह सुनकर नचिकेता की बुद्धिमत्ता पर यमराज प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा— ‘आत्मतत्त्व का विवेचन अत्यन्त सूक्ष्म एवं गहन है। उसे सब लोग नहीं समझ सकते। उसके अधिकारी भी कम ही लोग होते हैं। इसलिए इस गूढ़ ज्ञान के लिए तुम मुझे बाध्य न करो।’

इस पर नचिकेता ने पुनः कहा— ‘जब आप ही इसे गूढ़ विषय कह रहे हैं तब आपको छोड़कर अन्य कौन विशेषज्ञ मिलेगा? अतः मुझे गूढ़ आत्मज्ञान का उपदेश दें।’ उसकी बात सुनकर यमराज ने धन इत्यादि माँगने के लिए प्रलोभन दिया, किन्तु नचिकेता ने उन्हें नाशवान् कह कर अक्षय ज्ञान देने का ही आग्रह किया और कहा— ‘सामान्य लोगों की दृष्टि में परलोक संदेहपूर्ण है, आप बताइए आत्मा अमर है या नाशवान्?’ इस पर यमराज प्रसन्न हुए। यमराज ने आत्मविद्या के गहन ज्ञान का उपदेश करते हुए कहा— ‘नचिकेता संसार में दो मार्ग हैं। एक श्रेय, दूसरा प्रेय। श्रेय मार्ग को स्वीकार करने वाले शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं और प्रेय मार्ग को अपनाने वाले दुःखी होते हैं, क्योंकि वह नश्वर है।’

यमराज से उपदेश ग्रहण कर नचिकेता को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। वह पिता के पास लौट आया। इस आत्मज्ञानी पुत्र को देखकर नचिकेता के पिता अत्यन्त प्रसन्न हुए।

शिक्षा— यजमान (यज्ञ करने वाले को) को यज्ञ के अवसर पर दुधारू गौ आदि उपयोगी वस्तुओं का ही दान करना चाहिए। पुत्र को पिता का

आज्ञाकारी एवं हितचिन्तक होना चाहिए। आज्ञाकारी पुत्र नचिकेता की भाँति वरदान प्राप्त करता है और आत्मज्ञान प्राप्त कर यमराज तक के यहाँ से लौट आता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति का अधिकारी वही है जिसे भौतिक सुखों का लोभ न हो। वस्तुतः आत्मज्ञान का मार्ग श्रेय अर्थात् कल्याण का है और भौतिक सुखों का रास्ता प्रेय मार्ग है जो कि ऊपर से तो प्रिय लगता है किंतु परिणाम में हितकर नहीं है। अतः प्रेय मार्ग को छोड़कर श्रेय मार्ग को अपनाना ही कल्याणकारी है।

12. सत्यकाम जाबाल (छांदोग्योपनिषद्)

गौतम नामक एक ऋषि थे उनसे शिक्षा-दीक्षा पाने के लिए सत्यकाम जाबाल नामक एक लड़का उनके पास पहुँचा। सत्यकाम से प्रसन्न होकर गौतम ऋषि ने उसे अपना शिष्य बना लिया और 400 कृश एवं निर्बल गाएँ देकर कहा—‘बेटा! इन गायों के पीछे जाओ। हजार गाएँ होने पर ही लौटना’। सत्यकाम कई वर्षों तक वन में रहा और एक दिन उसके पास हजार गाएँ हो गईं। उन गायों में से एक बैल ने सत्यकाम से कहा—‘सत्यकाम, हमारी संख्या अब हजार हो गई है। हमें अब गुरु के पास ले चलो। मैं तुम्हें ब्रह्म-विद्या का एक अंश सिखाता हूँ। बैल ने उसे ब्रह्म-ज्ञान सिखाया। सत्यकाम गायों की इच्छा से गुरुकुल की ओर बढ़ने लगा। रास्ते में पहले अग्नि ने, फिर हंस ने और अन्त में जल-कुक्कुट ने उसे ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया। इस प्रकार ज्ञान ग्रहण करके वह आचार्य के घर लौट आया। आचार्य ने आने पर पूछा—‘सत्यकाम! तुम तो ब्रह्मवेत्ता के समान दिखाई देते हो। तुम्हें किसने उपदेश दिया?’ सत्यकाम ने उत्तर दिया— ‘मनुष्येतर प्राणियों या देवताओं ने। फिर भी आप पूजनीय हैं, मुझे उपदेश दीजिए। क्योंकि गुरुमुख से ज्ञान सीखने पर ही उसका लाभ होता है।’ गौतम ऋषि ने उसे फिर वही ज्ञान सिखाया।

शिक्षा—ज्ञान कहीं से भी ग्रहण किया जा सकता है किन्तु उसकी उपादेयता गुरु-मुख से प्राप्त होने पर ही होती है।

© NCERT
not to be republished